⊙ मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

⊙ संस्करण : प्रथम १९७२

⊙ प्रकाशक : प्रगति प्रकाशन
बैंतुल बिल्डिंग
आ ग रा – ३

⊙ संचालक : रामगोपाल परदेसी

⊙ दूरवाणी : 1 6 1 6 1

⊙ मुद्रक : शंकर मुद्रणालय
वा रा ण सी

प्राथमिकी

'तुलनात्मक शोध और समीक्षा' समय-समय पर लिखे गये मेरे शोधपरक निबन्धों का संग्रह है। इन निबन्धों में मैंने तुलनात्मक शोध एवं साहित्यिक समालोचना के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों के उद्घाटन करने का प्रयास किया है। निबन्धों के प्रत्येक विषय के प्रति यथासंभव न्याय करने की चेष्टा की गई है। आशा है कि यह निबन्ध-संग्रह विद्वानों की दृष्टि को आकर्षित कर सकेगा।

२२-८-७१

—पी० आदेश्वर राव

अनुक्रमणिका

तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया तथा उसकी उपादेयता

हिन्दी में अनुसंधान की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी गत दो दशाब्दियों में वह अंग्रेजी शब्द 'रिसर्च' का पर्याय बन गई है। इस समय हिन्दी में अनुसंधान की प्रक्रिया के तीन स्वरूप उपलब्ध होते हैं—

१. अनुसंधान, २ आलोचना, ३ तुलनात्मक अध्ययन। साहित्यिक अनुसंधान के इन तीन स्वरूपों में समानताओं के साथ भिन्नतायें भी वर्तमान हैं। इन तीनों के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला जाय।

१. साहित्यिक अनुसंधान के तीन विशिष्ट धर्म माने जा सकते हैं—नवीन तथ्यों की खोज, उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या और ज्ञान क्षेत्र का विस्तार।

२ 'आलोचना' का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् निरीक्षण। साहित्यिक आलोचना साहित्यिक कृतियों का सांगोपांग निरीक्षण करती है। इस प्रक्रिया के तीन विशिष्ट अंग हैं—प्रभाव-ग्रहण, व्याख्या और विश्लेषण, मूल्यांकन या निर्णय।

अनुसंधान और आलोचना—दोनों साहित्य-विद्या के दो उपभेद हैं। दोनों की प्रक्रिया में भी साम्य है। तथ्यों का संकलन, उनकी व्याख्या और निष्कर्ष का उपयोग दोनों करते हैं। फिर भी इन दोनों के दृष्टिकोण में भिन्नता है। अनुसंधान अन्वेषण पर अधिक बल देता है तो आलोचना निरीक्षण पर। फलान्त्व आलोचना का अनिवार्य अंग है, किन्तु अनुसंधान का नहीं, यदि है भी तो गौण रूप में। अनुसंधान का उद्देश्य ज्ञानवृद्धि है और आलोचना का आत्मा का साक्षात्कार कराना तथा मर्म का उद्घाटन करना है। वास्तव में उच्चतर आलोचना उत्तम अनुसंधान भी है और उच्चकोटि का साहित्यिक अनुसंधान आलोचना से अभिन्न है।

३- तुलनात्मक अध्ययन एक ही साहित्य के या विभिन्न साहित्यों के दो लेखकों या युगों की समानताओं तथा भिन्नताओं पर प्रकाश डालकर उनके कारणों का अन्वेषण करता है। अनुसंधान ...

...क अध्ययन में भी कुछ

पार्थक्य दिखाई पड़ता है। अनुसंधान की प्रक्रिया में तुलनात्मक-विधान की भी सहायता ली जाती है और तुलनात्मक अध्ययन में भी गम्भीर अन्वेषण, परीक्षण और निष्कर्ष आदि साहित्यिक आलोचना तथा अनुसंधान की प्रक्रियाओं से लाभ उठाया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन अनुसंधान की अपेक्षा आलोचना के ही निकट पड़ता है।

१. तुलनात्मक अध्ययन का महत्त्व :—साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन का उत्तरदायित्व आलोचना एवं अनुसंधान से भी महत्त्वपूर्ण है। यह मानव या व्यक्ति के सीमित ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार करता है और उसकी भाषा, साहित्य एवं देश के बन्धनों को ज्ञानार्जन में बाधा डालने नहीं देता। पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर के अनुसार 'सभी उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलना से हुई है और वह तुलना पर ही आधारित है।'[1] इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन उच्चतर ज्ञान-वृद्धि में सहायक होता है। यह साहित्य के क्षेत्र में एक ही साहित्य के या विभिन्न साहित्यों के लेखकों या प्रवृत्तियों की तुलना कर उनके बीच के साम्य या वैषम्य का उद्घाटन करता है और उनके कारणों की भी खोज करता है। अतः हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन के महत्त्व पर विचार करेंगे।

विश्व के विभिन्न देशवासियों के बीच जाति, वर्ण और धर्म आदि के वैमनस्य के होते हुए भी उनके मस्तिष्क एवं हृदय में प्रायः समानता पायी जाती है। चिरन्तन काल से मानव-मस्तिष्क एवं मानव-हृदय विकास के पथ पर अग्रसर होते आये हैं और विश्व-मानव के सतत प्रयासों ने विश्व-जीवन को प्रशस्त बना दिया है। जीवन के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु कला और साहित्य के क्षेत्र में भी विश्व-मानव का सम्पूर्ण बाह्य एवं आभ्यन्तर व्यक्तित्व स्वयं अभिव्यक्त होता जा रहा है। विश्व के सभी महत्वपूर्ण साहित्यों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्व-साहित्य में अभिव्यक्त मानव-चेतना एवं मानव-हृदय एक ही है। मानव-समाज के क्रमिक-विकास में विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों से गुजरते हुए भी इस प्रकार मानव-मन अपने देश, काल, भाषा एवं साहित्य के बन्धनों को पारकर विश्व-साहित्य के माध्यम से अपने सार्वभौम एवं चिरन्तन स्वरूप का परिचय देता आ रहा है। 'वातावरण, रीति-रिवाज, संस्कृति एवं सभ्यता आदि विषयों में भिन्नता होते हुए भी मानव-मन एक ही साँचे में

---

1. "... ... . all higher knowledge is gained by comparison and rests on comparison." (Max Muller *Lectures on the Science of Religion* P. 12)

ढला है ।'[1] मानव की यह एकता साहित्य एवं कलाओं मे अपना समग्र स्वरूप ग्रहण करती है । महाकवि वर्ड्सवर्थ के अनुसार भी 'थल और वातावरण, भाषा और रहन-सहन, शासन और रीति-रिवाज आदि में भिन्नता होते हुए भी सदा से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त विशाल मानव-समाज के साम्राज्य को कवि अपने आवेग और ज्ञान के सूत्रों से बाँध देता है ।'[2]

विभिन्न साहित्यो के अध्ययन से साहित्य के दो प्रधान तत्व हमारे सम्मुख आते है—

१. विभिन्न साहित्यों में अभिव्यक्त मानव-चेतना (मानव-हृदय एवं मस्तिष्क) की एकता ।

२. उन साहित्यों की विशेषताएँ और विलक्षणताएँ जिनके कारण उनका अपना पृथक् अस्तित्व है । उन साहित्यिक भाषा-प्रदेशो के जन-समुदाय के सामाजिक एव प्राकृतिक वातावरण, सभ्यता, संस्कृति आदि के कारण विभिन्न साहित्यो में पार्थक्य आ जाता है । विश्व के सभी साहित्य इन दो तत्त्वो के आनुपातिक मिश्रण से निर्मित हुए है । पाश्चात्य साहित्यो के बीच समानता, भिन्नता की अपेक्षा अधिक मुखर एवं स्पष्ट है और भारतीय साहित्यो के विषय में भी यही कहा जा सकता है । किन्तु पाश्चात्य और भारतीय साहित्यो में भिन्नता की मात्रा अवश्य कुछ अधिक ही है । इसी तरह तुलनात्मक अध्ययन के भी उपर्युक्त दोनो पक्ष हैं और वह दोनो के कारणों को भी ढूँढ निकालता है ।

वास्तव में भाषा और साहित्य दो भिन्न शब्द है और साहित्य के लिए भाषा का कोई बन्धन स्वीकार्य नहीं । भाषा केवल साहित्य की अभिव्यक्ति का

---

1. "Despite the differences in environment, in manners, in cultures and civilizations, the human mind is cast in the same mould" ['साहित्य-दर्शन' पर एक दृष्टि . Dr. G.S. Mahajani: in 'साहित्य-दर्शन'—प्रथम भाग P. 6.]

2. "... ... . inspite of difference of soil and climate of language and manners of laws and customs... . the poet binds together by passion and knowledge the vast empire of human society, as it is spread over the whole earth and over all time." (—Wordsworth : by Carlos Baker in 'English Romantic poets' pp 102. 103)

माध्यम मात्र है। साहित्य में मानव-समुदाय के भाव-जगत् एवं विचार-जगत् अभिव्यक्ति पाते है। विभिन्न साहित्यों के भाव-जगत् प्रायः एक-से रहते है और भाषा की भिन्नता तथा अन्य कारणों से उनमें किंचित् पार्थक्य अवश्य आ जाता है। 'हर एक भाषा की अपनी विशेषता है। किन्तु सभी भाषाओं में भावों का अस्तित्व है। भाव मानव-निष्ठ हैं और भाषा जाति-निष्ठ। यह जाति-निष्ठ भाषा भावों में विलक्षणता लाती है।'[१] अतः भिन्न साहित्यों की भाषागत विशेषताओं में से साहित्यगत एकरूपता या समानता का निरूपण करना तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बीच भिन्नताओं के कारणों की खोज करना भी उसका दूसरा उद्देश्य है। तुलनात्मक अध्ययन का महत्व मानवतावाद एवं विश्व-मानव की भ्रातृ भावना के साथ और भी बढ़ गया है। विश्व-साहित्य की एकता का निरूपण और उसके द्वारा विश्व-मानव की एकता का उद्घाटन तुलनात्मक अध्ययन का और एक उद्देश्य है। इस प्रकार यह भली भांति देखा जा सकता है कि तुलनात्मक अध्ययन का लक्ष्य हमारे सीमित ज्ञान का विस्तार करता है और अन्य साहित्यों की उपलब्धियों से भी हमें अवगत कराता है। उस समय मानव अपने देश, भाषा, जाति और काल के बन्धनों को पारकर विश्व-साहित्य तथा विश्व-मानव के उच्चतर साहित्यिक एवं कलात्मक उड़ानों को देखकर उसके रस-सिन्धु में डूब जाता है। मानव अपने भाषा, प्रान्त एवं जातिगत अहं को त्याग कर निलिप्त किन्तु गम्भीर होकर मानव-मूल्यों को परखने लगता है तो उसे विश्व-मानव हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। अतः दो साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी मानव के इस महान लक्ष्य के संकल्प का दृढ़ अङ्ग बनकर उसी भाषा में मानव-समाज के ज्ञान-क्षेत्र के विस्तार में सहायक सिद्ध होता है। संक्षेप में, चिरन्तन मानव की प्रतिभा की निधि विश्व के साहित्य-कोषों में संचित है जिस के सार्वभौम स्वरूप पर प्रकाश डाल कर तुलनात्मक अध्ययन मानव के ज्ञान-क्षितिज को विस्तृत करना है।

२. तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया के स्थूल एवं सूक्ष्म रूप :—अब यह सोचना आवश्यक हो जाता है कि तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया कैसी होती

---

१. "ए भाषका भाषाक्काणम् विशेषम्। कानि भावङ्ङळ् एवं भावङ्ङ्ङु मुडुवु। भावङ्ङु मानव निष्ठङ्ङु, भाष जातिनिष्ठम्। ई जाति निष्ठमेन भाष भावङ्ङळ्क्कु ञुक्क विलक्षणतयु उण्टाक्कुन्नु।" [सेतु—ना रचना : विश्वनाथ सत्यनारायन। दिवंगी विश्वनाथ साहित्य दर्शिका (आ

चाहिए ? उसके मानदण्ड क्या है ? वास्तव में तुलनात्मक अध्ययन उसी समय
सफल माना जायगा जबकि अध्ययन की दो विषय-वस्तुओ में अधिक समानता
हो या वस्तुएँ कम से कम एक ही सूत्र में बंधी हो। तुलना में तो समानता या
एकरूपता को अधिक बल मिलना चाहिये। वैसे तो भिन्नतायें सर्वत्र दिखाई
पड़ती है। जिस प्रकार साहित्यिक अनुसधान के स्थूल एवं सूक्ष्म रूप है उसी
प्रकार तुलनात्मक अध्ययन मे भी ये दोनो रूप पाये जाते है। तुलनात्मक
अध्ययन का स्थूल रूप वह है जिसने भिन्न साहित्यो या एक ही साहित्य के दो
प्रवृत्तियो के वर्ण्य-विषय, काल विभाजन, सामाजिक एवं सास्कृतिक परिस्थि-
तिया और उसके अन्तर्गत आनेवाले कवियो एवं उनमे प्रयुक्त अलंकारो तथा
छन्दो की लम्बी सूची आदि का उल्लेख हो। दो कवियो के विषय मे भी यही
रूप समक्ष आ जाता है। यह तो केवल तथ्यो का संकलन मात्र होता है जो
आगे चलकर किसी सत्य के उद्घाटन मे सहायक हो सकता है। सत्य के
आविष्कार में इस स्थूल सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। अत हम यह
नही कह सकते कि साहित्यिक अनुसधान के इस स्थूल रूप का स्वय अपने में कोई
महत्व या मूल्य नही, किन्तु यह अनुसधान की उच्चतर भूमि तो नही हो सकती।
साहित्यिक अनुसधान के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन में भी इस पर दृष्टिपात
किया जाता है कि आलोच्य साहित्यो मे किस प्रकार मानव के उच्चतर मूल्यो,
विचारधाराओ, चिंतन-प्रणालियो एव अनुभूतियो को अभिव्यक्ति मिली है जो
उन साहित्यो के माध्यम से प्रकट हुई है। इन्ही मानव-मूल्यो का उद्घाटन तथा
अज्ञात ज्ञान-राशि का प्रकाशन ही तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।
यही साहित्य के अन्तर्गत तुलनात्मक अध्ययन का सूक्ष्म रूप है। 'सच्ची
साहित्यिक विद्वत्ता स्थूल तथ्यो पर नही, अपितु मूल्यो तथा गुणो पर निर्भर
करती है।'[1] तुलनात्मक अध्ययन के सूक्ष्म रूप के उद्घाटन करने में उसका स्थूल
रूप केवल साधन मात्र बन जाता है। अत. उच्चतर तुलनात्मक अनुसधान
करने के लिए आलोचक को आलोच्य साहित्यो के माध्यम से मानव-मूल्यो का
निर्धारण करना चाहिए और उस कार्य के लिए सभी उपलब्ध सामग्री का
समुचित उपयोग भी करना चाहिए। 'सम्पूर्ण साहित्यिक प्रक्रियाओ की परीक्षा
करना, उनकी तुलना करना, उनका वर्गीकरण करना, उनके कारणों की

---

1. . "True literary scholarship is not concerned with nert facts, but with values and qualities." Rene Wellek. (*The crisis of Comparative Literature* p. 156)

(आ) एक साहित्यिक व्यक्तित्व का अन्य साहित्यों पर प्रभाव।
'हिन्दी कवियों पर रवीन्द्र का प्रभाव' ऐसे विषय पर एक प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है।

(इ) एक साहित्यिक प्रवृत्ति या काव्य-धारा का दूसरे साहित्य की प्रवृत्ति या काव्य-धारा पर प्रभाव।
'अङ्ग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का हिन्दी कविता पर प्रभाव' इस विषय पर उच्च कोटि का प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है।

३ दो या उससे अधिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन—विषय के अनुसार इसे चार भागों में बाँट सकते हैं—

(अ) दो कवियों की तुलना।
इसके उदाहरण स्वरूप डा० शंकरराजुलु नायडु का शोध प्रबन्ध 'कम्बन और तुलसी' रखा जा सकता है।

(आ) दो विशिष्ट कृतियों की तुलना।
डा० रामनाथ त्रिपाठी का शोध प्रबन्ध 'कृत्तिवासी बँगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन तथा डा० विद्यामिश्र का शोध प्रबन्ध, वाल्मीकि-रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन' इसके उदाहरण है।

(इ) दो प्रवृत्तियों या युगों की तुलना।
इसके अन्तर्गत डा० रत्नकुमारी का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवियों (१६वीं शताब्दी) का तुलनात्मक अध्ययन', डा० के० भास्करन नायर का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियों का तुलनात्मक अध्ययन', डा० हिरण्मय का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन', डा० प्रभाकर माचवे का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी और मराठी का निर्गुण संतकाव्य (११वीं से १५वीं शती : तुलनात्मक अध्ययन) आदि आते हैं।

(ई) किसी साहित्यिक विधा की तुलना।
डा० पाण्डुरंगराव का शोध प्रबन्ध 'आंध्र-हिन्दी रूपक (हिन्दी और तेलुगू नाटक-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन)' इसके अन्तर्गत आता है।

खोज करना तथा उनके परिणामों को निर्धारित करना ही तुलनात्मक साहित्य का वास्तविक ध्येय है।"[1]

३. तुलनात्मक अध्ययन के प्रकार :—तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया को तीन प्रकारों में बाँट सकते हैं। विषय के स्वभाव के अनुरूप हर प्रकार को पुनः विभिन्न भागों में विभाजित कर सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. एक ही साहित्य के अन्तर्गत तुलनात्मक अध्ययन। इसे भी और तीन भागों में विषय की सीमा के अनुरूप, विभाजित किया जा सकता है—

(अ) दो लेखकों या कवियों की तुलना।
इसके उदाहरण के रूप में डा० गोविन्द त्रिगुणायत से लिखित 'कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन' को लिया जा सकता है।

(आ) दो प्रवृत्तियों की तुलना।
'द्विवेदी-युगीन कविता और छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन' ऐसे विषय पर एक तुलनात्मक प्रबन्ध लिखा जा सकता है।

(इ) दो युगों की तुलना।
'हिन्दी के भक्तिकाल और रीतिकाल के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' ऐसे विषय पर तुलनात्मक अध्ययन हो सकता है।

२. एक साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव। यह प्रभाव तीन रूपों में पड़ सकता है—

(अ) एक साहित्य का दूसरे साहित्य पर प्रभाव।
इसके उदाहरण के रूप में डा० सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण' का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत-साहित्य का प्रभाव (१४००–१६०० ई०)' और डा० विश्वनाथ मिश्र का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव' आदि लिये जा सकते हैं।

---

1. "To examine, then, the phenomena of literature as a whole, to compare them, to group them, to classify them, to enquire into the causes of them, to determine the results of them—this is the true task of comparative literature." (Publications of the Modern Language Association of America, 1896. Ed. by James W. Bright : Taken from the essay *The Comparative study of Literature* : p. 166)

उपर्युक्त तीनों प्रकारों के अध्ययन में प्रथम में तो एक साहित्य के ही अन्तर्गत तुलना होती है, अतः ऐसे अध्ययन का महत्व उसी साहित्य तक ही सीमित है। दूसरे प्रकार में तुलनात्मक अध्ययन एक साहित्य के अन्य साहित्यों पर प्रभाव को स्पष्ट करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक साहित्य का प्रभाव अन्य साहित्यों के दृष्टिकोणों, भावों, विचारों एवं चिंतन-प्रणालियों पर किस प्रकार पड़ता है और ऐसे प्रभावित साहित्य के प्रान्त की संस्कृति एवं सभ्यता किस प्रकार परिवर्तित हुई है। "एक साहित्य के अन्य साहित्यों पर प्रभाव का अध्ययन करते हुए तुलनात्मक साहित्य वास्तव में, उस साहित्य की समग्र संस्कृति का प्रभाव अन्य साहित्यों पर स्पष्ट करता है। सत्यतः यह प्रक्रिया एक साहित्य के विद्वान को अपनी संस्कृति के अतिरिक्त अन्य संस्कृतियों की प्रशंसा करने को बाध्य करती है। इस प्रकार वह इस विभक्त संसार में जन-समुदायों को एक दूसरे के निकट लाने और मानव-जाति की भिन्नताओं की अपेक्षा एकता पर बल देने की चेष्टा करता है।"[1] विशाल संस्कृत साहित्य का प्रभाव विश्व के सभी सभ्य साहित्यों पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में दिखाई पड़ता है। जर्मन और अंग्रेजी साहित्यों पर तो यह प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। इसी तरह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अनादिकाल से ही पाश्चात्य तथा भारतीय साहित्यों के बीच विचारों का आदान-प्रदान रहा है। अतः तुलनात्मक अध्ययन पश्चिमी और भारतीय साहित्यों की एकरूपता, भिन्नता और एक दूसरे पर प्रभाव आदि का सांगोपांग अध्ययन कर, एक कमी की पूर्ति अवश्य करता है।

तीसरे प्रकार में तुलनात्मक अध्ययन अपने समग्र रूप में प्रकट होता है। इसमें अनुसंधाता को दो साहित्यों का समुचित अध्ययन एवं अनुशीलन करना पड़ता है। उसे उन साहित्यों के मूल स्वरों के साथ साहित्यिक भाषा-प्रान्तों की संस्कृति, सभ्यता एवं वातावरण का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए। अन्यथा

1. "Comparative Literature, in studying the impact of one literature, actually of a whole culture, on others, is really concerned with the appreciation of cultures other than that of the individual scholar. In this way it tends to bring people together in this divisive world and to stress the oneness of the human race rather than its differences."
(Comparative Literature Vol. I : Proceedings of the second congress of the I. C. L. A. : p. xxii.)

की समग्रता को केन्द्र बनाकर किये गये। केवल स्फुट या परिच्छिन्न रूप से दो कवियों की विशेषताओं के प्रदर्शन का कोई अर्थ नहीं होता। इन सब कार्यों में हमारा लक्ष्य सांस्कृतिक पक्ष के सामूहिक उद्घाटन का ही हो सकता है। वस्तुतः लोक संस्कृति और प्रादेशिक संस्कृतियों से सम्बन्धित समस्त अनुशीलन जातीय जीवन की विविधता में एकता का संकेत करने का लक्ष्य ही रख सकता है।"[1] अतः भारत के विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों में जो समानतायें एवं भिन्नतायें मिलती हैं, उनके कारणों पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। सभी प्रादेशिक साहित्यों की तुलना कर, उनमें व्याप्त भारत की सार्वभौम सांस्कृतिक एकता को निर्धारित कर उसके आधार पर भारतीय साहित्य के मूल स्वरों के साथ-साथ उसके समग्र व्यक्तित्व तथा उसके सांस्कृतिक हृदय को भी स्पष्ट किया जा सकता है। "इस प्रकार यह विश्वास करना कठिन नहीं है कि भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है। देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक विदेशी प्रभाव के कारण अनेकता को ही बल मिलता रहा है। इसकी मूलवर्ती एकता का सम्यक् अनुसंधान अभी होना है। इसके लिए अत्यन्त निस्संग भाव से, सत्य-शोध पर दृष्टि केन्द्रित रखते हुए भारत के विभिन्न साहित्यों में विद्यमान समान तत्वों एवं प्रवृत्तियों का विधिवत् अध्ययन पहली आवश्यकता है। यह कार्य हमारे अध्ययन और अनुसंधान की प्रणाली में परिवर्तन की अपेक्षा करता है। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए—वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यन्त अपूर्ण रहेगा।"[2] भारतीय साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन इसलिये और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि अनादिकाल से भारतवर्ष में एक ही विचारधारा का, एक ही जीवन-दर्शन का, एक ही महान आदर्श का प्रसार एवं प्रचार था। 'भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले उत्पन्न हुई, राजनीतिक राष्ट्रीयता बाद को जन्मी है।'[3] सामान्यतः विशाल संस्कृत भाषा तथा

---

१. अनुसंधान की प्रक्रियाः विषय-निर्वाचन १ (लेख

वाजपेयी। पृ० ७५–७६।

२ डाक्टर नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध 'भारती

नामक लेख से। पृ० ७०।

३ रामधारीसिंह दि

पृ० ४६८।

साहित्य का प्रभाव सभी साहित्यों पर पाया जाता है। भारतीय दर्शन तथा
सके अध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रभाव सभी साहित्यों पर न्यूनाधिक मात्रा में
या जाता है। इन साहित्यों की मुख्य गतिविधियों में और भी मौलिक
ानतायें मिलती हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय साहित्य
भिन्न प्रादेशिक साहित्य-सुमनों से भरा हुआ एक ही उपवन है। जिस प्रकार
ों के अपने पृथक् रूप-रंग के होते हुए भी उनमें एक ही रस का, एक ही
का अस्तित्व है उसी प्रकार विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बाह्य रूप-रंगों
नता और आंतरिक चेतना की समानता दिखाई देती है। इस तरह प्रादे-
साहित्य भारतीय साहित्य के उपवन में अपने बाह्य रूप-रंगों के वैविध्य
की विशालता और आंतरिक समानता से उसकी अखण्डता का उद्घाटन
के समग्र सौन्दर्य को द्विगुणीकृत करते हैं। अत. भारतीय साहित्य के
रूप का आकलन करने के लिए पहले उसके विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों
तुलनात्मक अध्ययन का होना अत्यन्त आवश्यक है।

की समग्रता को केन्द्र बनाकर किये गये। केवल स्फुट या परिच्छिन्न रूप से दो कवियों की विशेषताओं के प्रदर्शन का कोई अर्थ नहीं होता। इन सब कार्यों में हमारा लक्ष्य सांस्कृतिक पक्ष के सामूहिक उद्‌घाटन का ही हो सकता है। वस्तुतः लोक संस्कृति और प्रादेशिक संस्कृतियों से सम्बन्धित समस्त अनुशीलन जातीय जीवन की विविधता में एकता का संकेत करने का लक्ष्य ही रख सकता है।"[१] अतः भारत के विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों में जो समानतायें एवं भिन्नतायें मिलती हैं, उनके कारणों पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। सभी प्रादेशिक साहित्यों की तुलना कर, उनमें व्याप्त भारत की सार्वभौम सांस्कृतिक एकता को निर्धारित कर उसके आधार पर भारतीय साहित्य के मूल स्वरों के साथ-साथ उसके समग्र व्यक्तित्व तथा उसके सांस्कृतिक हृदय को भी स्पष्ट किया जा सकता है। "इस प्रकार यह विश्वास करना कठिन नहीं है कि भारतीय वाड्‌मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है। देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक विदेशी प्रभाव के कारण अनेकता को ही बल मिलता रहा है। इसकी मूलवर्ती एकता का सम्यक् अनुसधान अभी होना है। इसके लिए अत्यन्त निस्संग भाव से, सत्य-शोध पर दृष्टि केन्द्रित रखते हुए भारत के विभिन्न साहित्यों में विद्यमान समान तत्वों एवं प्रवृत्तियों का विधिवत् अध्ययन पहली आवश्यकता है। यह कार्य हमारे अध्ययन और अनुसंधान की प्रणाली में परिवर्तन की अपेक्षा करता है। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए— वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यन्त अपूर्ण रहेगा।"[२] भारतीय साहित्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन इसलिये और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि अनादिकाल से भारतवर्ष मे एक ही विचारधारा का, एक ही जीवन-दर्शन का, एक ही महान आदर्श का प्रसार एवं प्रचार था। 'भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले उत्पन्न हुई, राजनीतिक राष्ट्रीयता बाद को जन्मी है।'[३] सामान्यतः विशाल संस्कृत भाषा तथा

---

१. अनुसंधान की प्रक्रिया: विषय-निर्वाचन १ (लेख में) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी। पृ० ७५–७६।

२ डाक्टर नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध 'भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता' नामक लेख से। पृ० ७०।

३ रामधारीसिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय। द्वितीय संस्करण। पृ० ४६८।

साहित्य का प्रभाव सभी साहित्यों पर पाया जाता है। भारतीय दर्शन तथा
उसके धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का प्रभाव सभी साहित्यों पर न्यूनाधिक मात्रा में
पाया जाता है। इन साहित्यों की मुख्य प्रवृत्तियों में और भी मौलिक
समानतायें मिलती हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय साहित्य
वैविध्य प्रादेशिक साहित्य-कुसुमों से भरा हुआ एक ही उपवन है। जिस प्रकार
...नों के अपने पृथक् रूप-रंग के होते हुए भी उनमें एक ही रस का, एक ही
...ंध का अस्तित्व है उसी प्रकार विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के बाह्य रूप-रंगों
भिन्नता और आन्तरिक चेतना की समानता दिखाई देती है। इस तरह प्रादे-
...र साहित्य भारतीय साहित्य के उपवन में अपने बाह्य रूप-रंगों के वैविध्य
...गत विशालता और आन्तरिक समानता से उसकी अखण्डता का उद्घाटन
उसके समग्र सौन्दर्य को द्विगुणीकृत करते हैं। अतः भारतीय साहित्य के
समग्र स्वरूप का आकलन करने के लिए पहले उसके विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों
के बीच तुलनात्मक अध्ययन का होना अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय काव्य-साहित्य में 'उर्वशी' की परिकल्पना

असंख्य युगों की कल्प कारा को चीरकर अतुलित यौवन एवं सौन्दर्य की साकार प्रतिमा, देवलोक की अप्सरा उर्वशी अनेक भारतीय कवियों के मनो-जगत् में स्वच्छन्द विहार करती हुई दिखाई पड़ती है। प्रत्येक कवि उसे अपनी आँखों से देखता है। वह अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उर्वशी की रूप-कल्पना करने लगता है और अपने मानस-पटल पर खिंचे हुए उसके चित्र को काव्य की वाणी में उतार देता है। इस प्रकार उर्वशी अनेक कवियों में प्रसुप्त सौन्दर्य-बोध का उन्मीलन कर देती है। भारतीय काव्य-साहित्य में कतिपय कवियों की उर्वशी विषयक कल्पनाओं का साक्षात्कार कराना ही इस लेख का लक्ष्य है।

उर्वशी और पुरूरवा की कथा का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। उसके पश्चात् शतपथ ब्राह्मण में और पुराणों में मिलता है। यूनानियों के ईरास-साइकी की भाँति तथा स्कांडिनेवियनों के एरिजा-ओडोर की भाँति हमारे वेदों के उर्वशी-पुरूरवा भी प्रेयसी-प्रिय हैं। रामायण, महाभारत, हरिवंश तथा विष्णु-पुराण आदि काव्य-ग्रन्थों में उर्वशी की कथा का उल्लेख मिलने पर भी उसका कोई विशेष महत्व नहीं है। संस्कृत काव्य-साहित्य में उर्वशी-कथा को प्रमुखता देनेवाले महाकवि कालिदास हैं। कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' में चित्रित उर्वशी अधिकतर नर्तकी की भाँति दिखायी पड़ती है। किन्तु चतुर्थ अङ्क में विक्रम का विरह-चित्रण अत्यन्त उदात्त रूप में हुआ है।

आधुनिककाल में उर्वशी ने अनेक कवियों को अपने सौन्दर्य की ओर आकृष्ट कर लिया है। ऐसे कवियों में अरविन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, टेंबुलापल्लि कृष्णशास्त्री और रामधारी सिंह दिनकर अत्यन्त प्रमुख ... विन्द की ...
मानव को अपने कर्तव्य से विचलित करनेवाल
सौन्दर्य-मोह में पड़कर विक्रम का कर्त्तव्यच्युत ह
नहीं था। इसी कारण उन्होंने उ
को उद्दीप्त करनेवाली का

इस प्रकार वासना की
रूपरेखा प्रदान करनेवाले

गाथाएँ प्रचलित हैं। एक गाथा के अनुसार वह देव-दानवों के क्षीरसागर मंथन के समय सागर से उत्पन्न हुई है और दूसरी गाथा के अनुसार वह विष्णु के 'ऊरु' से निकली है। इन दोनों में से रवीन्द्र ने प्रथम गाथा को ग्रहण किया है। उन्होंने एक हाथ में विष-कलश और दूसरे हाथ में अमृत-कलश लेकर क्षीरसागर-तरंगों पर खड़ी होनेवाली चिर यौवना एवं वृन्तहीन पुष्प के रूप में उर्वशी की कल्पना की है। रवीन्द्र की उर्वशी-कल्पना पर ऋग्वेद तथा कालिदास के प्रभाव के अतिरिक्त यूनान की पौराणिक गाथाओं का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से पाया जाता है। सागर-तरंगों पर खड़ी होनेवाली उर्वशी का रूप यूनानी-देवी अफ्रडेट (Aphrodite) का स्मरण दिलाता है। यह देवी भी फेन से जन्म लेती है। एक हाथ में अमृत-कलश और दूसरे में विष-कलश धारण करने वाली उर्वशी की रावीन्द्रिक कल्पना पर अंग्रेजी कवि स्विनबर्न की 'ओड आन अफडेटी' शीर्षक कविता का प्रभाव लक्षित होता है। स्विनबर्न ने अफडेटी को सागर से समुद्भूत अमूल कलिका से कड़वे फूल में परिणत होनेवाली नारी के रूप में देखा है—

> "A bitter flower from the bud
> Spring from the sea without ro ts"—
>
> *Swin Burne*

स्विनबर्न की जलदेवी (Perilous goddess) भी समुद्र से ही जन्म लेती है। उसके एक हाथ में अमृत-कलश और दूसरे हाथ में विष-कलश शोभित होते हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के उर्वशी-पुरुरवा के संवाद का प्रभाव भी रवीन्द्र पर लक्षित होता है। पौराणिक गाथाओं की उर्वशी अवस्था भेद के अनुसार वधू, पत्नी तथा माता के रूप में दिखाई पड़ती है। परन्तु रवीन्द्र के अनुसार न वह माता है, न कन्या है और न वधू है, वह केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति और आदर्शमयी नारी है—

> "न हो माता, न हो कन्या, न हो वधू, सुन्दरी रूपसि,
> हे नन्दनवासिनी उर्वशि।"
>
> —रवीन्द्र

कवि के अनुसार वह उषा की भाँति अनवगुण्ठिता है—

> "उषार उदय सम अनवगुण्ठिता, तुमी अकुण्ठिता।"
>
> —रवीन्द्र

रवीन्द्र की उर्वशी प्रथम मिलन के अवसर पर प्रिय के पास जाने में संकोच एवं लज्जा का अनुभव करनेवाली ममतामयी नारी भी है। इस अवसर

सुर-नर-किन्नर-गन्धर्व नही,
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्व नर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत" —उर्वशी : दिनकर

दिनकर की उर्वशी देश और काल के बन्धनों को स्वीकार नहीं करती। वह यौवन-सुषमा-दीप्त चिरन्तन नारी है। वह विश्व-प्रेयसी है। उर्वशी अपना परिचय इस प्रकार देती है—

"मैं देश-काल से परे चिरन्तन नारी हूँ,
मैं आत्मतंत्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा,
रूपसी अमर मै चिर-युवती सुकुमारी हूँ।
सरिता, समुद्र, गिरि, वन मेरे व्यवधान नही।
मैं भूत, भविष्यत्, वर्तमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त,
मैं विश्वप्रिया।" —उर्वशी : दिनकर

कृष्णशास्त्री और दिनकर की उर्वशी-विषयक कल्पना में पर्याप्त साम्य के होते हुए भी दोनों की प्रतिमाएँ एक-सी नही हैं। कृष्णशास्त्री की उर्वशी पर रावीन्द्रिक प्रभाव होने के कारण वह कहती है कि वह हलाहल के अनल तथा अमृत के शीतल रस के साथ जनमी है। वे उसी के आजन्म सहचर हैं। दिनकर ने भी कथावस्तु तथा कुछ घटनाओं को परम्परा से अवश्य ग्रहण किया है। किन्तु उन्होंने अपनी उर्वशी को नये साँचे में ढाल दिया है। दिनकर की उर्वशी कहती है कि वह सिन्धु की सुता नहीं है—

"मैं नहीं सिन्धु की सुता,
तलातल-अतल-वितल-पाताल छोड़
नीले समुद्र को तोड़ शुभ्र
झिलमिल फेनांशुक मे प्रदीप्त
नाचती उर्मियों के सिर पर
मैं नही महातल से निकली।" —उर्वशी : दिनकर

अत: उर्वशी के जन्म के सम्बन्ध में कृष्णशास्त्री तथा दिनकर की धारणाएँ पृथक् हैं। कृष्णशास्त्री की उर्वशी विश्व-नर की चिरन्तन प्रेयसी होने के साथ-साथ वह स्वयं कवि की प्रेयसी भी है। कालिदास तथा रवीन्द्र की भाँति

विकास की कोई दिशा स्पष्ट नहीं है। प्रसाद के काव्य का सहज विकास होता गया, परन्तु सत्यनारायण के काव्य का सहज विकास उपलब्ध नहीं होता। इसका कारण यह है कि सत्यनारायण ने अपनी काव्यधारा को विभिन्न दिशाओं में मोड़ दिया और उन दिशाओं का स्वतंत्र व्यक्तित्व भी रहा है। प्रसाद ने अपने समय एवं प्रांत की सीमाओं को लांघकर विश्व-मानव की चिरन्तन समस्याओं पर प्रकाश डाला है तो सत्यनारायण ने आन्ध्र के प्रांतीय वैभव के साथ वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन किया है। विश्वनाथ का "रामायणकल्पवृक्षमु" केवल रामचरित पर आधारित एक परम्परागत महाकाव्य है। प्रसाद अपनी गहन चिंतनशीलता, दूरदर्शिता, संतुलित दार्शनिकता एवं जागरूकता के कारण विश्व के महान कवियों में आसानी के साथ गौरवमय स्थान प्राप्त कर सकते है, परन्तु सत्यनारायण के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। इसका कारण यह है कि अनेक काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन करते हुए भी विश्वनाथ सत्यनारायण का दृष्टिकोण कभी प्रसाद की भाँति विशाल नहीं रहा। कुछ कविताओं को छोड़कर उनकी दृष्टि आन्ध्र के वातावरण के अतिरिक्त कहीं बाहर नहीं पड़ी। अपने काव्यों के लिए कथानक का आधार इतिहास अथवा पुराणों से ग्रहण करते हुए भी दोनों कवियों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। ऐतिहासिक धरातल प्रसाद के लिए केवल आधार मात्र है। वे उसके माध्यम से उदात्त भावनाओं, मार्मिक अनुभूतियों तथा दार्शनिक विचारों को व्यक्त करते हैं। परन्तु सत्यनारायण की दृष्टि ऐतिहासिक कथानक पर अधिक रहती है। विश्वनाथ के काव्य में वर्णनों तथा भावनाओं की कमी नहीं है। फिर भी यह निस्सन्देह कह सकते है कि प्रसाद सत्यनारायण की अपेक्षा ऐतिहासिक कथानक को (कामायनी में) एक विश्वजनीन अनुभूति तथा अनु- के रूप में परिणत करने में अधिक सफल हुए है। जहाँ प्रसाद अपने काव्य में मानव-जीवन तथा उसकी अनन्त समस्याओं का अंकन कर उनके समाधान भी प्रस्तुत करते है, वहाँ सत्यनारायण अपने काव्य के माध्यम से कतिपय सुन्दर वर्णनों एवं क्षणिक आवेगों के अतिरिक्त और कुछ देने में असमर्थ रहे है। जहाँ प्रसाद के प्रौढ़ काव्यों में काव्यत्व, अनुभूति, दर्शन तथा मनोविज्ञान मिलकर एकाकार हो गये है, विश्वनाथ के काव्य में केवल भावनाओं का आवेग ही अधिक मिलता है। प्रसाद मानव-जीवन को गहराई दे जितना दे सके उतना सत्यनारायण नहीं। प्रसाद अपने काव्य को चिरन्तनता, विशालता, सूक्ष्मता एवं प्रौढ़ता के कारण भारतीय क्षितिज को पारकर विश्व-साहित्य में एक अमर स्थान प्राप्त करने की क्षमता रखते है। परन्तु विश्वनाथ का काव्य आन्ध्र

जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण : एक तुलना

जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण आधुनिक हिन्दी और तेलुगु-साहित्यों के दो आलोक-स्तम्भ हैं। इन दोनों महाकवियों की विराट प्रतिभा ने दोनों साहित्यों की प्रत्येक विधा में नया प्रकाश भर दिया है। यद्यपि ये दोनों कवि स्वच्छंदतावाद की परिधि में आते हैं, फिर भी उस वाद के तार उन्हें बाध रखने में सर्वथा असमर्थ है। उन्होने गीतिकाव्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी और समीक्षा आदि सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी प्रौढ़ प्रतिभा का परिचय दिया है। इस प्रकार इन दोनों कवि-कलाकारो की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने उन्हे आधुनिक भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

जयशंकर प्रसाद और विश्वनाथ सत्यनारायण भारतीय संस्कृति के अमर व्याख्याता है। इन दोनो के काव्य की आधार-भूमि भारतीय संस्कृति ही है। प्रसाद पर बौद्ध दर्शन तथा शैव दर्शन का अत्यधिक प्रभाव है तो विश्वनाथ पर पुराणो तथा उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इन कवियो में भारत के भव्य इतिहास के प्रति अपार श्रद्धा परिलक्षित होती है। अपनी भारतीयता तथा अपने विचारो पर सम्पूर्ण विश्वास रखने वाले इन साहित्यिक मनीषियों पर पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव बिलकुल दिखायी नही पड़ता। भारतीय सांस्कृतिक दीप्ति एवं आत्म-सम्मान की भावना इन दोनो कवियों में समान रूप से पायी जाती है। दोनों कवि भावना के आवेग में बहते हुए भी गांभीर्य और संतुलन कभी नही खो बैठते। दोनो में अदम्य आत्म-विश्वास तथा अपने काव्य पर पूर्ण आस्था सर्वत्र पायी जाती है।

परन्तु दोनों कवियों मे पर्याप्त अन्तर भी है। जहाँ प्रसाद अपने काव्य में देश-काल की सीमाओ को पार कर विश्वजनीनता प्राप्त कर लेते हैं, वहाँ सत्यनारायण अपने काव्य में देश और काल के बन्धनो से सीमित दिखायी पड़ते है। जहाँ प्रसाद की विचारधारा तथा चिन्तन-प्रणाली का स्वाभाविक विकास पाया जाता है, वहाँ सत्यनारायण की विचारधारा निर्दिष्ट होती हुई भी उसके

किन्नेरसानि पाटलु का नायक रुठकर चलने वाली पत्नी का आलिंगन करने में उसके हाथों में ही वह पिघलकर सरिता बन जाती है। अपनी प्राण-प्रिया का इस प्रकार एक सरिता बनकर बह जाना नायक के लिए अशनिपात की तरह प्रतीत हुआ। बिछुड़नेवाली पत्नी की वेणी पकड़कर रोकने की चेष्टा के असफल होने पर दु खातिरेक में नायक यों कह उठता है—

> पगोत्तेडु नीवेणी बयमु पुनिति चेतनु
> करमुन वेणिकि बदुलुग काल्वगट्टे नीटि पोरलु।[1]

"हे प्रिया! मुझसे दूर भागनेवाली तुम्हारी वेणी को मैंने हाथ से पकड़ लिया, परन्तु मेरे हाथ में वेणी की जगह जल-धाराएँ ही उमड़ बहने लगी है।"

यों कहते हुए नायक दुःख के अतिशय भार से घनीभूत होकर पत्थर के रूप [में] परिवर्तित हो जाता है। नायिका किन्नेरसानि भी अपने पति की प्रस्तर [प्र]तिमा का लहरों के हाथों से आलिंगन करती है। वह अपने पति को छोड़कर [जा]ना नहीं चाहती है, परन्तु विवश होकर उसे प्राकृतिक नियम का अनुसरण [कर] बहना पड़ा। वह अपने आचरण पर पछताती है। वह पुनः मानवी बनना [चाह]ती है, परन्तु बन नहीं पाती। इस प्रकार आँसू तथा किन्नेरसानि [पाटल]ु में विरह-जन्य दुःख एवं निराशा का अङ्कन अनेक रूपों में मिलता है।

आँसू के नायक की भाँति किन्नेरसानि अपने पति को शिला के रूप में पाकर रो उठती है। दोनों वियोग में असह्य पीड़ा का अनुभव करते हैं। दोनों अतीत के सुखमय मिलन की मादक स्मृतियों में डूब जाते हैं। आँसू का नायक अपने प्रिया-समागम का सुन्दर चित्र यों प्रस्तुत करता है।

> परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
> निश्वास मलय के झोंके
> मुख-चन्द्र-चाँदनी जल से
> मैं उठता था मुँह धो के।[2]

किन्नेरसानि भी वियोगावस्था में अपने पति के साथ बिताये मिलन की घड़ियों का स्मरण कर अधीर हो उठती है। वह कह उठती है—

---

१. किन्नेरसानि पाटलु : विश्वनाथ सत्यनारायण। पृ० ८।
२. आँसू: जयशंकर प्रसाद। एकादश संस्करण। पृ० २७।

प्रांतीय दृष्टिकोण के कारण आन्ध्रों के अतिरिक्त अन्यों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता। सत्यनारायण कभी भी अपने प्रान्त की सीमाओं के ऊपर उठ नहीं सके।

इन दोनों कवियों में इतने वैषम्य के होते हुए भी दोनों मूलतः प्रेम तथा शृंगार के कवि हैं। विप्रलम्भ शृंगार के क्षेत्र में असाधारण समानता इन कवियों में पायी जाती है। इस दृष्टि से प्रसाद का "आँसू" तथा सत्यनारायण का "किन्नेरसानि पाटलु" तुलनीय हैं।

आँसू और किन्नेरसानि पाटलु—इन दोनों विरह-काव्यों के कथानक में कोई साम्य के न होते हुये भी उनके अंगीरस में पर्याप्त समानता मिल जाती है। दोनों काव्यों में विरह एवं मिलन का वर्णन विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत ही हुआ है। आँसू एक आत्माश्रयी विप्रलम्भ काव्य होने के कारण यहाँ स्वयं कवि ही नायक है और किन्नेरसानि पाटलु में कवि नायक तथा नायिका के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। आँसू में नायक अपनी अतीतकालीन स्मृतियों में डूबकर विह्वल क्रन्दन करने लगता है। उसकी स्मृतियों के माध्यम से ही नायिका का स्वरूप पाठकों या सहृदयों के समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। परन्तु नायिका कभी भी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं होती। इसके विपरीत किन्नेरसानि पाटलु में नायिका स्वयं एक पात्र के रूप में दृष्टिगोचर होती है। आँसू में प्रणय तथा विरह की अभिव्यक्ति केवल नायक करता है तो किन्नेरसानि पाटलु में नायक और नायिका दोनों विरह-जन्य विह्वलता प्रकट करते हैं। जहाँ प्रसाद ने प्रकृति को अपने काव्य में अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया है तो सत्यनारायण ने उसे प्रस्तुत के रूप में भी स्वीकार किया है।

आँसू तथा किन्नेरसानि पाटलु के नायक अपनी प्रेयसियों के वियोग-भार से दब जाते हैं। दोनों प्रेयसियों के विछोह को सहन नहीं कर सकते। वियोगावस्था में दोनों करुण क्रन्दन करने लगते हैं। आँसू का नायक अतीत की स्मृतियों में डूबकर अनन्त पीड़ा का अनुभव करता है। वह कह उठता है—

> मादक थी मोहमयी थी
> मन बहलाने की क्रीड़ा,
> अब हृदय हिला देती है
> वह मधुर प्रेम की पीड़ा।[1]

---

१. आँसू : जयशंकर प्रसाद। एकादश संस्करण। पृ० १२।

नीलि मब्बुल बोलु
निडिविनी चेतुल्ल
नन्निंक कौगलिचगरावु कावोलु
कडु प्रेमतो चेरगानीवु कावोलु
नेम्मदिग नायोडलु निमुरवु कावोलु ।[1]

"नीले बादलों की भाँति रहनेवाले तुम्हारे हाथ शायद ही मेरा आलिंगन करने तथा मेरे शरीर को स्पर्श पुलकों से भरने आयेंगे ।" विरहिणी मिलन की स्मृतियों में यों डूब जाती है—

नेनु कोपमु नदि नीप्रक्क नुंडगा
बलदलकोट्टि ना पदमु लोत्तुचु नीवु
तेलचि कौगिटिलो तेचुंकुंदू नीवु
नारोम्मु तल चेचंगा रावु कावोलु ।[2]

"मेरे मान को छुड़ाने के लिए मेरे पैर दबाते हुए तुम मुझे गोद में उठाकर अपने मस्तक को मेरे सीने से लगाने अब शायद ही तुम आओगे ।" पुनः वह कह उठती है—

तलिराकु बंटि मेत्तनि येर्पेदवितो
ताचि नामोमु नद्दगरावु कावोलु
नायोडलु मिगुल नंदंपु कुप्प यनि चेप्पि
एल्लतावुलनु मुद्दिडरावु कावोलु ।[3]

"किसलय-से कोमल और लाल अधरों से मेरे मुख पर चुम्बन करने अब तुम नहीं आओगे । मेरे शरीर को सौंदर्य-धाम कहकर सभी स्थानों पर चूमने शायद अब नहीं आओगे ।" इस प्रकार सत्यनारायण ने नायिका की वियोगावस्था में भी मिलन-शृंगार का समावेश किया है । इस संदर्भ में यह द्रष्टव्य है कि आँसू और किन्नेरसानि पाटलु में दोनों कवियों ने करुण एवं विप्रलंभ शृंगार की भावनाओं को सहज एवं मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति दी है । ये दोनों काव्य भारत के विप्रलंभ काव्यों की परम्परा में विशिष्ट स्थान पाने योग्य हैं ।

---

१. किन्नेरसानि पाटलु : विश्वनाथ सत्यनारायण । पृष्ठ १६ ।

२. वही । पृ० १६ । ३. वही । पृ० १७ ।

सुमित्रानन्दन पन्त और अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवि

अनादिकाल से ही विश्व के काव्य-साहित्य में दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है, वे है परम्परावाद और स्वच्छन्दतावाद। परम्परा के कवि भाषागत सौष्ठव एवं गाम्भीर्य को प्रधानता देने के साथ ही निर्वैयक्तिक होकर काव्य-निर्माण करते है। वे मानव-जीवन के सुकृत्यो एवं दुष्कृत्यो को खुलकर खेलने का अवकाश देते है। इन परम्परावादी कलाकारो की प्रवृत्ति अधिकतर खण्ड-काव्य एवं महाकाव्य लिखने की होती है। वाल्मीकि, व्यास, होमर, मिल्टन, मधुसूदन-दत्त, मैथिलीशरणगुप्त प्रभृति महाकवि इसी के अन्तर्गत आते है। स्वच्छन्दता-वादी कवि इसके ठीक विपरीत अपनी वैयक्तिक हृदयगत भावनाओं को स्वच्छन्द होकर प्रकट करते है और किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करते। इनमें अधिकतर छोटी एवं प्रवाहपूर्ण रचनाएँ लिखने की प्रवृत्ति के साथ ही प्रकृति, सगीत एव आदर्शों के प्रति अनन्य अनुराग पाया जाता है। ...ली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, बाइरन, रवीन्द्र प्रभृति महान कवि इसके अन्तर्गत आते ...। किन्तु कालिदास, जयशंकर प्रसाद प्रभृति कुछ महाकवियो में दोनो प्रवृत्तियो ... सामजस्य एव सन्तुलन प्राप्त होता है। वास्तव मे कोई कवि पूर्णरूपेण ...म्परावादी या स्वच्छन्दतावादी नही हो सकता। केवल उसकी प्रवृत्ति एक ... की ओर अवश्य रहती है। स्वच्छन्दतावादी कवि कीट्स एव निराला में परम्परावाद की कुछ वृत्तियाँ देखने को मिलती है तो परम्परावादी कवि मिल्टन एव मधुसूदनदत्त में स्वच्छन्दतावाद की झलक मिलती है। अत. अंग्रेजी साहित्य के मुख्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ पन्तजी की तुलना कर, उनके बीच पारस्परिक साम्य एवं वैभिन्य पर विचार करना अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा।

वर्ड्सवर्थ और पन्त—वर्ड्सवर्थ और पन्त प्रकृति के अनन्य उपासक है। दोनो को कविता लिखने की प्रेरणा प्रकृति-निरीक्षण से ही प्राप्त हुई थी। दोनो कवि प्रकृति के उल्लासमय प्राङ्गण में क्रीड़ा करते दिखाई देते है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यहाँ दोनो कवियो में पर्याप्त अन्तर है। वर्ड्सवर्थ प्रकृति को ... को साथ लेकर चलता है। "प्रकृति के ... न वह उस उच्च ...

उसकी (प्रकृति की) आत्मा और मानव की आत्मा मिलकर एकाकार हो जावे।" किन्तु जहाँ पन्त प्रकृति की अनन्त सुषमा में ही तल्लीन रहते हैं वहाँ वर्ड्सवर्थ प्रकृति की शोभा में हर्ष विभोर न होकर उससे दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को ग्रहण करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है। वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति को एक सन्देशवाहक एवं गुरु ठहराया है। उसने प्रकृति का आध्यात्मीकरण किया है। वह प्रकृति के कवि से कहीं अधिक प्रकृति का व्याख्याकार है। वह प्राकृतिक-सौन्दर्य के अङ्कन से कहीं अधिक उसके आन्तरिक मूल्यों को प्राधान्य देता है। प्रकृति के वाह्य आवरण से आत्मा तक जाने की प्रवृत्ति उनमें अधिक है। इसके ठीक विपरीत पंत मूलतः प्रकृति का कवि है। वह प्राकृतिक सहचरों के बीच रहकर आनन्द-विभोर हो उठता है, उसका हर एक क्रिया-कम्पन कवि के हृदय में स्पन्दन उत्पन्न कर देता है। वह प्रकृति के मोह के कारण वाला के बाल-जाल से भी मुक्ति पाना चाहता है। कवि का व्यक्तित्व सम्पूर्ण प्रकृति में बिखर जाता है तो प्रकृति स्वयं उसके प्राणों में समा जाती है और उसके कलात्मक पाशों में बँध जाती है। प्रकृति वर्ड्सवर्थ के लिए केवल आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों के वहन करने का माध्यम मात्र है, वह उसका साध्य नहीं। किन्तु पन्त का लक्ष्य प्रकृति की अनन्त सुषमा का साक्षात्कार करना एवं कराना है। अतः प्रकृति के कवि के रूप में पन्त का स्थान वर्ड्सवर्थ से ऊँचा है।

वर्ड्सवर्थ का प्रकृति एवं मानव के प्रति एक ही दृष्टिकोण रहा है। मानव के बाह्य आवरण से भी आन्तरिक सूक्ष्मता की ओर उसकी प्रवृत्ति अधिक है। कवि प्रकृति और मानव के पारस्परिक सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर मानव को उसके नैसर्गिक रूप में देखना चाहता है। शान्ति, सहिष्णुता सादगी, धैर्य तथा आशा से युक्त मानव ही उसका आदर्श मानव है। किन्तु पन्त ने मानव-जीवन में प्रेम, त्याग, विश्वास एवं साधना को अधिक प्रधानता दी है। दोनों भावुक कवियों में प्रबन्ध लिखने की प्रवृत्ति कम दिखाई देती है। प्रगीतों एवं मुक्तकों के क्षेत्र में दोनों ने सफलता के साथ काव्य-रचना की। दोनों की कविता आवेगपूर्ण न होकर कवियों के स्वस्थ एवं शान्त क्षणों में लिखी गयी-सी लगती है। दोनों की कविता में चिन्तन की गहनता, मधुर संयम, शान्त एवं गम्भीर स्निग्धता आदि के दर्शन होते हैं। दोनों में काव्य-विकास के साथ अनुभूति एवं भावना की अपेक्षा चिन्तन का, आध्यात्मिकता अपेक्षा दर्शन को प्रामुख्य मिलता गया है।

है। दोनों में हृदयगत सौम्य सौन्दर्य का दर्शन होता है। इनकी कल्पनात्मक अन्तर्दृष्टि अत्यन्त पैनी होने के कारण सौन्दर्य एवं सत्य की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर रजनी में नक्षत्रोज्ज्वल गगन से भी क्रीड़ा करने को मचल उठती है। दोनों कवि अपनी असाधारण काव्य-प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति द्वारा मानव-जीवन की कोमल अनुभूतियों और इन्द्रिय-ग्राह्य संवेदनाओं को व्यक्त करते हैं। एक प्रकार के बाल-जिज्ञासा एवं कौतूहल के साथ आन्तरिक उल्लास का दर्शन होते हुए भी इनके काव्य में एक कसक तथा करुण-भावना अन्तः सलिला की भाँति प्रवाहित होती रहती है। शेली और पन्त प्रेम-मार्ग के पथिक है। उनकी प्रेयसियों का सौन्दर्य उषा की लालिमा की भाँति उनके काव्य-गगन में बिखर गया है। शेली और पन्त के वैयक्तिक प्रेम की मादकता, स्वीय प्रणयानुभूति, अतीत की मधुमय स्मृतियाँ तथा आशा-निराशा की धूप-छाया आदि क्रमशः 'एपिप्सिडियॉन' और 'ग्रन्थि' में सचित है। प्रेम, करुणा एवं सहानुभूति दोनों की कविताओं के प्रधान गुण हैं। वैयक्तिक निराशा एवं करुणा की भावनाओं का क्रमिक-विकास ही इन दोनों कवियों को अधिक व्यापक धरातल पर ले गया। इन्होंने अपनी वैयक्तिक निराशा, करुणा एवं पीड़ा से ऊपर उठकर विश्व-वेदना का अनुभव कर, अपनी गहन संवेदनशीलता एवं व्यापक अनुभूति का परिचय दिया है। एक ओर शेली अपने प्रसिद्ध गीत 'स्काइलार्क' में पक्षी से आत्मीयता स्थापित कर उल्लास की भिक्षा माँगता है तो दूसरी ओर पन्त भी 'छाया' के करुणतर चित्रों को उपस्थित कर, उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उससे परपीड़ा से पीड़ित होना सीखना चाहता है—

> "पर पीडा से पीड़ित होना
> मुझे सिखा दो, कर मदहीन"
>
> —छाया : पन्त

दोनों कवि अपने वर्ण्य विषयों का मानवीकरण कर उनमें मानवीय भावनाओं का आरोप करते हैं। पन्त स्वयं अपने मन को विश्व-वेदना के ताप में तपने को उद्बोधित करता है—

> "विश्व वेदना में तप प्रतिपल
> जग जीवन की ज्वाला मे गल"
>
> —तप रे : गुंजन

'रिवोल्ट आफ इस्लाम' और 'प्रोमेथियस अन्बाउण्ड' आदि रचनाओं में शेली ने काव्य के द्वारा मानवता की सुन्दरतम भावनाएँ देने का सफल प्रयास

नैतिकता का आरोप नहीं करता। किन्तु पंत ने कहीं-कहीं दर्शन का अवलम्बन अवश्य ग्रहण किया है। बाइरन का व्यक्तित्व अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली था। यौवन, प्रेम, एवं अतीत से उसने काव्य-प्रेरणा ग्रहण की है तो पंत ने प्रकृति-निरीक्षण से। बाइरन का दृष्टिकोण यथार्थवादी एवं व्यावहारिक अधिक है तो पंत का आदर्शवादी। एक में यौवन की विलासिता एवं मादकता है तो दूसरे में यौवन का पावन उल्लास। बाइरन की उपमाओं एवं प्रतीकों में कवि का उन्मुक्त स्वरूप ही अधिक निखर आया है। उसके स्वभाव में अल्हड़पन है तो पंत में बालक की-सी सरलता। बाइरन की कविता में अन्योक्ति एवं व्यंग भी अधिक मात्रा में मिलते हैं तो पंत में व्यंग केवल उसके 'पल्लव' के प्रवेश में ही मिलता है काव्य में नहीं। बाइरन के सम्पूर्ण कृतित्व में भावनाओं का तीव्र वेग एवं सौन्दर्य का सशक्त अङ्कन पाया जाता है तो पन्त में संयमित सौन्दर्य की छटा है। नीचे के उद्धरण में बाइरन का सौन्दर्यवादी स्वरूप ही झलकता है—

> "सौन्दर्य में चलती है वह, मेघ-हीन
> वातावरण औ, नक्षत्रोज्वल गगन से
> शोभायमान रजनी के समान।" —बाइरन

काव्य-कला के क्षेत्र में भी दोनों कवियों में पार्थक्य है। बाइरन को अपने भाव-प्रकाशन के लिए अलङ्करण की आवश्यकता नहीं थी। कवि के हृदय से भाव वर्षाकालीन नदी-प्रवाह की भाँति दुनिवार वेग एवं नैसर्गिक शक्ति के साथ फूट पड़ते हैं। अतः बाइरन की कविता में कवि का प्रखर व्यक्तित्व ज्यों का त्यों उतर सका है। अपनी कविता की पंक्तियों को सुधारने एवं उनमें कलात्मकता लाने की प्रवृत्ति उसमें नहीं। बाइरन स्वयं अपने इस दुर्बल या सबल पक्ष से भली भाँति परिचित था। उसके ठीक विपरीत पन्त की कविता में संयम देखने को मिलता है और अपनी कविता की पंक्तियों को कला के कोमल स्पर्शों से अलंकृत करना भी। शब्दों के गुण-धर्मों के प्रति कवि सदा सजग रहा है। पन्त की कला कवि की लेखनी से अधिक चित्रकार की तूलिका से उद्भूत जान पड़ती है जो रेखाओं में समुचित रङ्ग भर कर आकर्षण उत्पन्न करती है। बाइरन मूलतः विद्रोही कवि है तो पन्त एक सौम्य कलाकार।

शेली और पन्त :—शेली और पन्त मूलतः प्रेम और स्वप्न के कवि हैं। इन दोनों के काव्य में कोमल भावनाओं एवं कमनीय कल्पनाओं को स्थान मिला

कल्पना के माध्यम से कीट्स ने इन्द्रियों के द्वारा सौन्दर्यानुभूति करने के तथ्य का द्वार खोला। बाह्य-जगत के वर्ण, गंध, ध्वनि एवं स्पर्श ने उसकी कल्पना को अधिक मात्रा में उद्दीप्त किया है। दृश्यात्मक वस्तुओं के सौन्दर्य ने कीट्स को आनन्द-विभोर किया और वह उसकी इच्छाओं का अन्तिम लक्ष्य था। क्योंकि जहाँ एक ओर उसने कवि पर ऐन्द्रिय वस्तुओं का असाधारण अधिकार स्पष्ट किया, वहाँ दूसरी ओर उसने दूर किन्हीं चिरन्तन एवं सार्वदेशिक अज्ञात सत्ता की ओर जाने की कवि-आकांक्षा के प्रति न्याय भी किया। पल्लव के कवि के लिए न्यूनाधिक मात्रा में यह कथन सार्थक हो जाता है। कहीं-कहीं इन कवियों के प्रेम और मिलन सम्बन्धी चित्रों में ऐन्द्रिय मादकता मिल जाती है—

(१) "निज परी-गुफा मे मुझे ले गयी,
और वहाँ निज दृष्टि फेरकर भरा तीव्र उच्छ्वास
मैंने मूँदा उसके हिंसक चिंताकुल नयनों को,
और सुलाया उसे चुम्बनों से।"

—कीट्स

"तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म-समर्पण सरल मधुर,
मिल गये सहज मारुतामोद।"

—प्रथम मिलन : पंत

(२) "या थकित इन्दु जब शंकित होकर
ऊपर को धरती पग मथर
पहन धवल-घन-वसने सुन्दर
शोभित होती ज्यो धाय मधुर
विश्रान्ति दिवस के वसने घर।"

—कीट्स

"लहरों के घूँघट से झुक-झुक,
दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता मुग्धा-सा रुक-रुक।"

—नौका-विहार : पंत

द्वितीय उद्धरण में कीट्स का बिम्ब विशद एवं पावन है तो पंत के बिम्ब में लज्जा एव प्रेम का माधुर्य है।

ये दोनो कवि एवं कलाकार काव्य-कला की दृष्टि से भी अत्यन्त निकट प्रतीत होते है। दोनो कवि अपने प्रगीतो में अत्यन्त प्राजल एवं परिष्कृत शब्दों

किया है। जहाँ एक ओर शेली ने चन्द्रमा, अप्सरा और पृथ्वी के विविध प्रतीकों के प्रयोग से 'प्रोमेथियस अनबाउण्ड' का सुन्दर रूपक निर्माण कर, मानवता के मुक्ति, भ्रातृत्व, प्रेम, स्वातन्त्र्य समानता एवं आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा की है वहाँ पन्त ने ज्योत्स्ना, स्वप्न, कल्पना आदि प्रतीको के प्रयोग से 'ज्योत्स्ना' की सृष्टि कर विश्व में प्रेम का नवल स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक एवं जीवन का विनूतन आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है। प्रकृति के प्रति मोह तथा संगीत के प्रति आकर्षण इन दोनों कवियो को और भी निकट ला देते हैं।

इतना साम्य होते हुए भी शेली और पन्त में पर्याप्त भिन्नताएँ भी हैं। पन्त-काव्य की मर्मज्ञ आलोचिका शचीरानी गुर्टू के शब्दो में शेली के मनोवेगों का विस्फोट दुर्निवार है, पन्त में अपेक्षाकृत गंभीरता और भाव-सघनता है। शेली के अंतस में भावनाओं की प्रचण्ड आँधी सी उठती है, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीतों में फूट पड़ती है—पंत का आवेश कल्पना की मधुर थपकियों में बिखर जाता है और उनके भावों की गति भाषा की गति के साथ समरस होकर आगे बढ़ती है। शेली में धुआँ-धार अप्रतिहत वेग है, पंत में अपूर्व धारा-प्रवाह है। शेली बाह्य-सौन्दर्य पर मुग्ध है, पन्त आभ्यन्तरिक सौन्दर्य के संवेदनशील द्रष्टा हैं। शेली में सूक्ष्म अगम्यता है, पंत व्यंजना की अनन्त सीमायें उद्‌घाटित करते हैं और उनके कल्पना-चित्र स्वप्न और सत्य, अनुभूति और इन्द्रिय-बोध के आत्यन्तिक प्रतीक बन कर प्रकट होते हैं। शेली के हृदय में सृजन की स्फूर्ति और स्वप्न-निर्माण का वैभव है, पन्त में आध्यात्मिक चेतना और वस्तु सत्य के समन्वय का कौतूहल। एक की दृष्टि आकाश की ओर एकटक निहार रही है, दूसरे की नीचे-ऊपर के सूक्ष्म सत्यों को जानने को सतत उत्सुक। एक में भावोन्मेष के परिष्कार की प्रवृत्ति है दूसरे में चिरन्तन समाधान की आकांक्षा। प्रथम पुरुषवाली शैली में लिखे जाने पर भी शे... "क्लाउड" और पंत के 'बादल' में आत्म-चेतना का पार्थक्य है। वै... होते हुए भी इतनी पारस्परिक निकटता बहुत कम कवियों में प्राप्त... इस प्रकार इन दोनों स्वप्न द्रष्टाओं ने जिन अमर सत्यों, कल्पनाओं... भूतियों को अपने काव्य के कोमल कलेवर में संचित किया है, उन्हें... के भयंकर फूत्कार भी विपाक्त या धूमिल नहीं कर सकते।

कीट्स और पंत—कीट्स और पन्त मूलतः सौन्दर्योपासक दोनों कवि सौन्दर्य के मादक एवं कोमल स्वरों के प्रति सतत जागरूक

भारत की दो महिला गीतिकार : महादेवी वर्मा और चावलि बंगारम्मा

महादेवी वर्मा और चावलि बंगारम्मा हिन्दी और तेलुगु की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धाराओं की प्रमुख कवयित्रियाँ हैं। इन दोनों कवयित्रियों ने अपनी-अपनी भाषा में अमर गीतों की सृष्टि की है। इन दोनों के व्यक्तित्व और कृतित्व में पर्याप्त साम्य परिलक्षित होता है। इन दोनों ने अपनी मार्मिक अनुभूति तथा अतिशय कल्पना—विलास को केवल गीतों के माध्यम से व्यक्त किया है। अतः इन दोनों महिला गीतिकारों की तुलना निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है—(१) प्रकृति-चित्रण एवं बिम्ब-विधान, (२) आध्यात्मिकता (३) कलाकारिता।

१. प्रकृति-चित्रण एवं बिम्ब-विधान—महादेवी वर्मा और बंगारम्मा ने प्राकृतिक वैभव का अङ्कन अनेक बिम्बों के माध्यम से किया है। दोनों ने प्रकृति में मानवीय चेतना को आरोपित करते हुए उसके माध्यम से मानवीय चेष्टाओं तथा क्रिया-कलापों का चित्रण किया है। महादेवी के लिए प्रकृति एक क्रीड़ा-स्थल है। कवयित्री उसके माध्यम से अनेक नैसर्गिक एवं काल्पनिक बिम्बों का अंकन करती है तो बंगारम्मा प्रकृति की चेष्टाओं को नारी की स्वाभाविक कैशोर भावनाओं के रंग में रंग देती है। महादेवी के गीतों में भी भारतीय नारी व्यक्तित्व को प्राकृतिक वेशभूषा पहिनाने की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है।

महादेवी के सभी गीतों में प्रकृति की छाया है। वे अपनी भावनाओं को प्राकृतिक परिधान भलीभाँति पहना सकती है। कभी-कभी महादेवी और बंगारम्मा प्रकृति में नारी मूर्तियों का दर्शन करती है। अपने गीत में महादेवी क्षितिज से धीरे-धीरे उतर आनेवाली वासन्ती निशा को सिर्योचित वेशभूषा से इस प्रकार सजाती है—

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त-रजनी !
तारकमय नव वेणी-बन्धन
शीशफूल कर शशि का नूतन

का प्रयोग करते है। उनके चित्रों या बिम्बों में कहीं भी धूमिलता एवं अस्पष्टता नही मिलती। वे अपने शब्दों के संगीत के द्वारा ही चित्र में प्राण फूंक कर उसे सजीव कर देते है। सौन्दर्याङ्कन एवं शब्द-शिल्प में दोनों कवि अद्वितीय हैं। 'भावी पत्नी' 'ज्योत्स्ना' और 'इन्दु' के चित्रों में कीट्स की कला की भव्यता पंत मे मूर्तिमान होकर आयी है। दोनों के कृतित्व में यथास्थान उनके करुणामय जीवन की कसक एवं निराशा की झलक मिल जाती है। कीट्स का 'ओड टु दि नाइटिंगेल' तथा पंत के 'ग्रन्थि' और 'परिवर्तन' उक्त कथन का समर्थन करते है।

किन्तु कीट्स और पंत में पर्याप्त पार्थक्य भी है। जहाँ कीट्स सत्य और सौन्दर्य को लेकर चलता है, वहाँ पन्त शिवं को भी प्रधानता देता है। यदि कीट्स इन्द्रियों की अनुभूतियो को प्रधानता देता है तो पन्त मानसिक एवं अतीन्द्रिय अनुभूतियों को। एक में सौन्दर्य की मादकता एवं मांसलता है तो दूसरे में सौन्दर्य की पावनता एवं अतीन्द्रियता। एक अपने सुख-दुख में तल्लीन रहता है तो दूसरा विश्व के सुख-दुख में लीन होने को उत्सुक। पन्त के ठीक विपरीत कीट्स की कतिपय लम्बी रचनाओं में परम्परावाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। कवियो के विकास में पन्त की प्रवृत्ति जीवन दर्शन एवं विचारो की ओर झुकी है तो कीट्स की प्रवृत्ति मार्मिक अनुभूति की ओर।

लघु गीतो के अतिरिक्त 'एण्डोमियन' 'लेमिया', 'दि ईव आव सेन्ट ऐग्नीज', 'इजबेल्ला' आदि प्राचीन काव्य से प्रभावित कीट्स की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी-स्वच्छन्द तावादी काव्य-धारा के प्रतिनिधि महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त विश्वसाहित्य में प्रमुख स्थान पाने योग्य हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर हिन्दी-संसार सदा के लिए गर्व कर सकेगा।

महादेवी के गीतों में प्रकृति के गत्यात्मक बिम्बों का बाहुल्य है। इन बिम्बों में दृष्टि की प्रमुखता रहती है। इनमें सजीवता के कारण सौन्दर्य की वृद्धि होती है। महादेवी प्रकृति के विभिन्न रूपों का मानवीकरण करती है और इनके द्वारा मानवीय चेष्टाओं तथा क्रिया-कलापों का अंकन करती है। प्रभात-कालीन गत्यात्मक बिम्बों की छटा नीचे की पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'हँस देना जब प्रात, सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली
लहरों का बिछलन पर जब
मचली पड़ती किरणें भोली,
तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूंघट सुकुमार
छलकी पलकों से कहती हैं, कितना मादक है संसार।

—आधुनिक कवि

बंगारम्मा के गीतों में भी गत्यात्मक बिम्बों की कमी नहीं है। 'आ कोण्ड' [वह पर्वत] शीर्षक गीत में उन्होंने अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण गत्यात्मक बिम्बों का अंकन किया है। वे लिखती हैं—

'मचुलो मुनिगिपदि
मायमै पोइदि
आकाशमुन गलसेनो
आकोंड
अक्कडे पडि युडेनो।''

—वैतालिकुलु

[सघन झाग में शीघ्र डूबकर
पर्वत अन्तर्धान हुआ है,
जाने नभ में लीन हुआ है
या उसी स्थान पर अटक गया है।]

इस प्रकार महादेवी और बंगारम्मा ने प्रकृति के कोमल एवं सुन्दर पक्ष पर सर्वाधिक ध्यान दिया है।

२ आध्यात्मिकता—महादेवी और बंगारम्मा ने आध्यात्मिक विषयों पर पर्याप्त गीतों की सृष्टि की। महादेवी एक रहस्यवादी कवयित्री हैं। उन्होंने अपने अलौकिक प्रियतम (ब्रह्म) को दृष्टिपथ में रखकर अनेक प्रेम-गीतों की रचना

रश्मि मलय सित घन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी !' —नीरजा

बंगारम्मा भी अपने 'नीड' (छाया) शीर्षक गीत में मंदार पुष्प को एक नारी के रूप में अंकित करती हैं। निर्मल जल के दर्पण में अपनी छाया देखकर मंदार पुष्प का अपने ही सौन्दर्य पर रीझ जाना तथा मुख पर तिलक लगाना आदि चेष्टाओं से उस चित्र में नारी मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है—

"अंदालु ताने चूसिदि
नीटिलो चंदालु ताने चेप्पिदि
ना तोटि
बोडुन्न मंदार बोंगि बोट्टु टुटुकुनि
अंदालु ताने चूचिदि ।' —काचन विपंचि

[देख रही थी अपनी छवि को
नद-तट की मंदार-सुन्दरी
जल पर झुक कर तिलक लगाती
देख रही थी अपनी छवि को ।]

दोनों कवयित्रियाँ प्रकृति के छविमय बिम्बों से अपने गीतों की शोभा बढ़ाती हैं। वे अपने गीतों में प्रकृति के स्थिर एवं गत्यात्मक बिम्बों की व्यवस्था कर देती हैं। ऐसे प्राकृतिक बिम्बो के निर्माण में उनकी परिष्कृत सौन्दर्य-भावना काम करती दिखायी पड़ती है। महादेवी अपने एक गीत में रजनी के श्यामल कपोलो पर ढुलकने वाले तुहिन कण रूपी श्रमकणों के निर्मल बिम्ब को अंकित करती हैं—

"रजनी के श्याम कपोलों
पर ढरकीले श्रम के कन,' —नीरजा

अपने 'कार्तिक पूर्णिमा' शीर्षक गीत में बंगारम्मा प्रकृति के निश्चल बिम्ब को यों प्रस्तुत करती हैं—

'पक्षुल्लु पलुकके पडियुंडिनायि
वृक्षालु चूचुचू वूरकुन्नायि ।" —काचन विपंचि

[मूक पड़ा है सारा खगकुल
वृक्ष देखते मौन धरे हैं ।]

अपने प्रियतम से मिल मैं उनसे एकाकार हुई
केवल वे ही सत्य रहे मिथ्या हैं अवशेष सभी।]

महादेवी और बंगारम्मा ने अपने प्रियतम के विरह में अनन्त पीड़ा का अनुभव किया है। वास्तव में विरह ही प्रेम को जागृत करता है। विरह का मर्मस्पर्शी चित्रण महादेवी के सम्पूर्ण गीतों में पाया जाता है, वे कहती हैं—

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात,
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात
जीवन विरह का जलजात !' —नीरजा

इस प्रकार महादेवी अपने प्रियतम के विरह में अविरल अश्रु-धारा बहाती हैं। बंगारम्मा अपनी वियोग-दशा राधा के विरह का चित्रण यों करती हैं—

"चूसिना तने कन्नु मूसिना तने
निजमु चूडलेकने नेनु
निलुवलेकुन्नानु" —कांचन विपंचि

[उन्मीलित आंखों में
मुंदी हुई पलकों में
केवल प्रियतम छाये;
उन्हें बिना देखे मैं
पल भर रह न सकूंगी।]

इस प्रकार दोनों महिला गीतिकारों ने अपनी आध्यात्मिक विरह-वेदना को वाणी दी है। परन्तु निर्विवाद रूप से इतना तो कहा जा सकता है कि बंगारम्मा के गीतों की तुलना में महादेवी के गीत अधिक सूक्ष्म, भव्य एवं क्षेत्र की विशालता को लिए हुए हैं। बंगारम्मा के गीतों में आल्हाद तथा महादेवी के गीतों में पीड़ा की मात्रा अधिक है।

कलाकारिता—कला की दृष्टि से महादेवी और बंगारम्मा के गीत अत्यन्त उच्चकोटि के हैं। दोनों महिला गीतिकारों ने संगीत और लय को निभाने के लिए मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। इनके गीतों में कहीं भी लय-भंग नहीं होता। दोनों गीत रचना की एक विशिष्ट प्रणाली को अपनाती हैं। प्रथमतः

यूरोप की स्वच्छन्दतावादी कविता का विकास

स्वच्छन्दतावाद काव्य-साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। सर्वप्रथम यूरोप में ही इस काव्य-प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस लेख में यूरोप के प्रमुख देशों के साहित्यों में स्वच्छन्दतावाद के विकास पर दृष्टिपात किया जाय।

जर्मनी में स्वच्छन्दतावाद—यूरोप में सर्वप्रथम स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन ने जर्मनी में अपने स्वरूप का संगठन किया। स्वभावतः मौलिकता के प्रेमी तथा विद्रोही जर्मनी के नवयुवकों ने परम्परागत काव्य की रूढ़ियों का अस्वीकार किया। जर्मनी में इस आन्दोलन ने केवल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, विचार, संस्कृति तथा दर्शन के क्षेत्र में भी प्रवेश कर जीवन की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया। जर्मनी में इस आन्दोलन का कोई निश्चित केन्द्र नहीं था। यहाँ लन्दन या पेरिस की भाँति युवक कवियों का समर्थन करने वाला शक्तिशाली नगर कोई नहीं था। अतः जर्मन स्वच्छन्दतावाद का विकास ग्रामीण वातावरण में हुआ। छोटे शहरों में स्थित विश्वविद्यालयों के आचार्य तथा उत्सुक विद्यार्थी इस आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। जर्मनी में स्वच्छन्दतावादी काव्य जन-समाज से असंपृक्त होता चला जा रहा था। कवियों में जीवन से पलायन की मात्रा अधिक थी। उन्होंने जीवन की विकट वास्तविकता के विरुद्ध विद्रोह करके अपने मनोनुकूल कल्पना-जगत् का निर्माण किया। "यथार्थ के प्रति विद्रोह करनेवाले स्वच्छन्दतावादी साहित्य में अपने छोटे दरबारों, धुंध से ढँके हुये महलों, विनोदपूर्ण संगीत-स्पर्श से पुलकित काननों, मधु के प्रशस्ति-गान में तल्लीन किसानों, स्वर्ण-केश-शोभित सुकोमल युवतियों से प्रेम करते हुये घूमनेवाले छात्र-कवियों के साथ स्वच्छन्दतावादी जर्मनी का स्वप्निल रूप अनायास हमारी कल्पना के सम्मुख थिरक उठता है।"[1] अन्य देशों के

1. "The Romantic Germany that lingers in our imagination, with its quaint little courts, its misty castles, forests touched with enchantment, peasants singing over their wine, wandering student-poets falling in love with tender golden-haired maidens, belongs these dreams, being largely the creation of romantic literature, rebelling aga'nst reality." (Literature and Western man : J. B. Priestley. P. 125)

यूरोप की स्वच्छन्दतावादी कविता का विकास

स्वच्छन्दतावाद काव्य-साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। सर्वप्रथम यूरोप में ही इस काव्य-प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस लेख में यूरोप के प्रमुख देशों के साहित्यों में स्वच्छन्दतावाद के विकास पर दृष्टिपात किया जाय।

जर्मनी में स्वच्छन्दतावाद—यूरोप में सर्वप्रथम स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन ने जर्मनी में अपने स्वरूप का संगठन किया। स्वभावतः मौलिकता के प्रेमी तथा विद्रोही जर्मनी के नवयुवकों ने परम्परागत काव्य की रूढ़ियों का अस्वीकार किया। जर्मनी में इस आन्दोलन ने केवल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, विचार, संस्कृति तथा दर्शन के क्षेत्र में भी प्रवेश कर जीवन की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया। जर्मनी में इस आन्दोलन का कोई निश्चित केन्द्र नहीं था। यहाँ लन्दन या पेरिस की भाँति युवक कवियों का समर्थन करने वाला शक्तिशाली नगर कोई नहीं था। अतः जर्मन स्वच्छन्दतावाद का विकास ग्रामीण वातावरण में हुआ। छोटे शहरों में स्थित विश्वविद्यालयों के आचार्य तथा उत्सुक विद्यार्थी इस आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। जर्मनी में स्वच्छन्दतावादी काव्य जन-समाज से असंपृक्त होता चला जा रहा था। कवियों में जीवन से पलायन की मात्रा अधिक थी। उन्होंने जीवन की विकट वास्तविकता के विरुद्ध विद्रोह करके अपने मनोनुकूल कल्पना-जगत् का निर्माण किया। "यथार्थ के प्रति विद्रोह करनेवाले स्वच्छन्दतावादी साहित्य में अपने छोटे दरबारों, धाग से ढँके हुये महलों, विनोदपूर्ण संगीत-स्पर्श से पुलकित काननों, मधु के प्रशस्ति-गान में तल्लीन किसानों, स्वर्ण-केश-शोभित सुकोमल युवतियों से प्रेम करते हुये घूमनेवाले छात्र-कवियों के साथ स्वच्छन्दतावादी जर्मनी का स्वप्निल रूप अनायास हमारी कल्पना के सम्मुख थिरक उठता है।"[1] अन्य देशों के

---

1. "The Romantic Germany that lingers in our imagination, with its quaint little courts, its misty castles, forests touched with enchantment, peasants singing over their wine, wandering student-poets falling in love with tender golden-haired maidens, belongs these dreams, being largely the creation of romantic literature, rebelling aga'nst reality." (Literature and Western man : J. B. Priestley. P. 125)

क्रान्तिकारी कवि थे, जिनकी ख्याति जर्मनी की अपेक्षा यूरोप में ही अधिक फैली। इस प्रकार सन् १७७० से लेकर सन् १८३० तक जर्मनी के साहित्य में स्वच्छन्दतावादी-युग माना गया है। जर्मनी के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन ने अन्य पाश्चात्य साहित्यों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यापक प्रभाव डाला। केवल यूरोप का नहीं, अपितु विश्व-साहित्य के अनेक प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों तथा विचार-प्रणालियों का उद्गम भी जर्मनी का स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन ही है।[1]

२. इंग्लैण्ड में स्वच्छन्दतावाद—

जर्मनी की भाँति इंग्लैण्ड में स्वच्छन्दतावाद ने एक सार्वजनीन आन्दोलन का स्वरूप धारण नहीं किया। वहाँ तो जर्मनी का सम्पूर्ण वातावरण ही स्वच्छन्दतावादी बन गया था। जर्मनी में तो स्वच्छन्दतावाद की पत्र-पत्रिकायें चलती थीं, प्रकाशक भी ऐसे साहित्य के प्रकाशन में रुचि लेते थे, दार्शनिकों तथा विचारकों का समर्थन भी उसे प्राप्त हुआ था और विश्वविद्यालयों में नियमित रूप से उस पर भाषण भी दिये जाते थे, किन्तु इंग्लैण्ड में स्वच्छन्दतावादी धारा केवल काव्य-साहित्य तक ही सीमित रही।[2] वास्तव में व्यवसाय-प्रिय अंग्रेजी जनता ने स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में अधिक उत्साह प्रदर्शित भी नहीं किया। फिर भी अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों को उनके काव्योत्कर्ष के कारण विश्व के महान कवियों की पंक्ति में आसानी से स्थान मिल गया है।

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति पर रूसो, डारविन जैसे विचारकों तथा जर्मनी के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का प्रभाव अवश्य देखा जा सकता है। यद्यपि अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का आरंभ वर्ड्सवर्थ और कोलरिज से

1. "Many tendencies, attitudes, idiosyncrasies of our world literature since 1830 down to the present time originated in proliferated from, this German Romantic Movement." (Literature and Western Man : J. B Priestley P. 127.)

2. "What is certain is that what was elsewhere a definite Romantic Movement, as in Germany complete with periodicals and publishers, philosophers and courses of University lectures, was in England a mere drift towards romantic writing." (Literature and Western Man : J. B. Priestley. P. 142 & 143.)

प्रकाशित "लिरिकेल बेलेड्स" के साथ समझा जाता है, फिर भी इस काव्य-प्रवृत्ति के बीज गोल्डस्मिथ की रचनाओ में पाये जाते हैं। उनकी "ट्रेवलेर", "डिजर्टेड विलेज", "हेमिट" आदि कृतियों में प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म अङ्कन तथा प्रेम की उदात्तता का निरूपण किया गया। सन् १७९८ में इंग्लैण्ड में स्वच्छन्दतावाद का आरंभ माना जाता है जब कि विलियम वर्ड्सवर्थ (१७७०-१८५०) तथा यस० टि० कोलरिज ने मिलकर "लिरिकल बेलेड्स" का प्रकाशन करवाया। इस काव्य-संग्रह में अनेक अमूल्य रचनाओ के होते हुये भी उस समय के आलोचकों ने इसकी कटु आलोचना की। इसी विरोध के कारण वर्ड्सवर्थ ने अपनी प्रसिद्ध कविता "प्रिल्यूड" का प्रकाशन बहुत बाद में करवाया। अतः वर्ड्सवर्थ तथा कोलरिज को अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तकों के रूप में माना जा सकता है। वर्ड्सवर्थ की कविताओं में एक सजीव मस्तिष्क, सहानुभूतिपूर्ण हृदय तथा सृजनशील व्यक्तित्व के क्रियात्मक रूप का दर्शन होता है। कोलरिज (१७७४-१८३४) अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि, दार्शनिक तथा आलोचक है। कोलरिज ने "दि ऐन्शियंट मेरिनर" "कुब्ला खान" क्रिस्टाबेल, आदि काव्यो का प्रणयन कर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को आगे बढाया। उसका "दि एन्शियंट मेरिनर" अंग्रेजी स्वच्छन्दता-वाद का एक अद्‌भुत गीतात्मक कथा-काव्य है। कोलरिज के अनेक भाषणों तथा निबन्धों का सकलन "बयोग्राफिया लिटरेरिया" के नाम से उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित किया गया, जिसमें उसके मस्तिष्क की विशालता एवं गहराई की छाप मिलती है।

यद्यपि अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के आरम्भिक चरण का विकास वर्ड्सवर्थ तथा कोलरिज में पाया जाता है, उसके द्वितीय चरण का विकास तथा वैभव बायरन, शेली तथा कीट्स में देखा जा सकता है। बायरन से (१७८८-१८२४) अपने पूर्व के स्वच्छन्दतावादी कवियो की भाँति काव्य में आध्यात्मिकता एवं नैतिकता का आरोप नही किया, अपितु अपने हृदय के अदम्य उत्साह एवं प्रचण्ड वेग को काव्य का आकार प्रदान किया है। सन् १८१२ में उसने "चैल्ड हैराल्ड्स पिलिग्रिमेज" का प्रकाशन किया तो उसे अत्यन्त ख्याति मिल गयी। "डान जोन" उसकी एक असम्पूर्ण रचना होते हुए भी उसमें अन्योक्ति एवं व्यंग्य की मात्रा अधिक है। बायरन के साथ ही स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रांगण में प्रवेश करनेवाले शेली (१७९२-१८२२) में आरम्भिक शक्ति एवं उत्साह था। विद्रोही प्रकृति के होते हुये भी काव्य-क्षेत्र में वह एक कोमल तथा भाव

प्रवण स्वप्नद्रष्टा था।[1] अनेक मुक्तक रचनाओं के साथ "एपिप्सडियन", "रिवोल्ट आफ इस्लाम", "प्रोमेथियस अन्बाउण्ड" उसके महान काव्य-ग्रन्थ हैं। एक ओर शेली ने सामाजिक तथा साहित्यिक बन्धनों के प्रति विद्रोह करते हुए दूसरी ओर अपने काव्य में चित्रात्मकता, गीतात्मकता तथा संवेदना भरकर उसे अत्यन्त मनोहारी रूप प्रदान किया। अपनी विद्रोही चेतना तथा गीतात्मकता की दृष्टि से शेली अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का सर्वोत्तम कवि है। शेली ने अपने प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबन्ध "ए डिफेन्स आफ पोयट्री" लिखकर स्वच्छन्दतावादी काव्य तथा कवि-कर्म का जोरदार समर्थन किया। शेली के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रभाव समकालीन अंग्रेजी कवियों पर देखा जा सकता है। इस प्रकार बायरन तथा शेली की विचारधारा तथा काव्य-साधना में विद्रोह का स्वर अत्यन्त मुखर है। "बायरन तथा शेली द्वारा गृहीत स्वातन्त्र्य का वैभवीकरण, स्वाभाविक मनोवृत्तियों का प्रकाशन आदि फ्रांस की राज्यक्रान्ति की कुछ प्रवृत्तियाँ मानवतावादी विचार-धारा के बृहत् प्रवाह में लीन हुई।"[2] इन दोनों कवियों के साथ अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद को आगे की ओर अग्रसर करने वाले अन्तिम महान कवि जॉन कीट्स (१७९५-१८२१) है। सन् १८१६ में उसने कुछ मुक्तक रचनाओं का प्रणयन किया। सन् १८१७ में उसने "एण्डिमियन" नामक कथा-काव्य लिखा जिसे एक वर्ष के पश्चात् कीट्स के घनिष्ट मित्र टेलर ने प्रकाशित कराया। इस काव्य में कीट्स की प्रतिभा के मोती स्थल-स्थल पर बिखर पड़े हैं। तत्कालीन दो प्रमुख पत्र "ब्लैकवुड" और "क्वार्टर" में

1. "But when he is in full high flight—and he is a poet we associate with air and fire, not earth and water-his poetry is marvellous in its innocence and loveliness, its swiftness and grace, its opalescent colouring and shifting lights; as if it already belonged to—and is indeed celebrating —some future golden Age." (Literature and Western Man : J. B. Priestley : P. 151.)

2. "The absorption by Byron and Shelley of certain aspects of the French Revolution, the glorification of Liberty, the vindication of the natural instincts, these matters that merged ito the great stream of Humanitarian sentiment." (A History of English Literature : Compton—Rickett : P. 294.)

युवतियों ने स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का हृदय से स्वागत किया। स्वच्छन्दतावादी कविगण इससे प्रोत्साहन पाकर और भी द्विगुणित उत्साह के साथ अपनी काव्य-साधना में लीन रहे और कालान्तर में उन्होंने साहित्य क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त किया। पत्र-पत्रिकाओं में भी इनकी रचनायें छपती थी और इनके विषय में चर्चा तथा आलोचना भी होती थी। पत्रिकाओं में उन पर की गयी कटु आलोचना भी अप्रत्याशित रूप से उनके साहित्य-प्रचार में सहायक हुई।

सन् १८३० तक आते-आते फ्रेंच स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन एक निश्चित स्वरूप धारण कर चुका था। पेरिस इस आन्दोलन का मुख्य केन्द्र था। फ्रांस में यह आन्दोलन कला के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। सभी कलाओं में भारी परिवर्तन आ उपस्थित हुए। इस आन्दोलन ने कविता, नाटक, उपन्यास तथा चित्रकला के क्षेत्र में अधिक ख्याति प्राप्त की। फ्रेंच स्वच्छन्दतावादी काव्य भी चित्रात्मकता की ओर अधिक उन्मुख रहा। इसी समय फ्रेंच स्वच्छन्दतावाद के पितामह समझे जानेवाले वयोवृद्ध फ्रांको रीनाद्रि छटोब्रियाण्ड इस आन्दोलन के युवक-कवियों तथा कलाकारों का नेतृत्व कर रहे थे। छटोब्रियाण्ड में फ्रेंच कवियों की अहंभावना चरमोत्कर्ष पर थी। उनका व्यक्तित्व भी स्वच्छन्दतावादी था। उनके पश्चात् आलफ्रेड डि विगनी तथा लेमारटैन काव्य-क्षेत्र में आये। इन दोनों कवियों ने इस आन्दोलन के प्रथम चरण पर पदार्पण किया था। परन्तु उन दोनों की प्रतिभा में वैषम्य था। लेमारटैन अत्यन्त लोकप्रिय कवि था और उसकी लोकप्रियता का कारण यह रहा कि उसने अपने काव्य में मानव-जीवन की कोमल भावनाओं तथा अभिलाषाओं को गीतात्मक अभिव्यक्ति दी। स्वयं उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ होते हुए भी उसने अपने हृदय के कोमलतम पक्ष को ही काव्य में प्रकट किया। इसके विपरीत 'डि विगनी' की कविता में संतुलन गहराई तथा व्यंग का पुट अधिक है। परन्तु उसकी कविताओं की संख्या प्रचुर मात्रा में नहीं है।

फ्रेंच स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का केन्द्र-बिन्दु विक्टर ह्यूगो (१८०२-१८८५) था। उन्होंने अपने प्रसिद्ध नाटक "हरनानी" के साथ क्रान्ति लाकर

---

egoism, a new cult of personality, the literary ego inflated like a monstrous balloon, with the poet, the artist, no longer expressing society but challenging it and defying it." (Literature and Western Man : J. B. Priestley : P. 160.)

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को गति प्रदान की। सन् १८३० के एक शाम को वे चार सौ युवक-उत्साहियों तथा कला-प्रेमियों को साथ लेकर पेरिस के लेटिन क्वार्टर से मर्जर भवन तक चले, जहाँ उस नाटक का अभिनय प्रस्तुत किया गया। प्रेक्षकों में फ्रांस के समकालीन ख्यातिप्राप्त सभी साहित्यकार थे। नाटक के प्रथम दृश्य में ही परम्परावादी नाटक की रूढ़ियों को शिथिल होते देखकर प्रेक्षको में एक उत्साह की आँधी छा गयी। इसी घटना के साथ विक्टर ह्यूगो तथा उसके साथ अन्य स्वच्छन्दतावादी कवि एवं कलाकारो का यश सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया। ह्यूगो में अपने व्यक्तित्व और कृतित्व पर अभिमान था। उनमें आत्म-विश्वास की कोई कमी न थी। उनकी अपरिमेय शक्ति ने उन्हे साहित्य के हर एक क्षेत्र में सफलता के सिंहासन पर बिठा दिया। गेटे और रवीन्द्र की तरह ह्यूगो भी सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होने मुक्तक कवितायें, कथा-काव्य, नाटक, उपन्यास तथा निबन्ध आदि की रचना प्रचुर मात्रा में की। ह्यूगो में हर एक साहित्यिक नवीनता को धीरे-धीरे अपनाने का स्वभाव नहीं था। वे किसी भी नवीनता को आँधी के अदम्य वेग तथा उद्वेग के साथ अपनाते थे। वे अपने जीवन के अन्तिम काल तक स्वच्छन्दतावादी रचनाओ के प्रणयन में ही तल्लीन रहे। अपने भयंकर वैयक्तिक अहं को न छोड़ सकने और आत्म-विस्मरण न कर सकने के कारण तथा संवेदनशील कल्पना के द्वारा पात्रो के सहज व्यक्तित्व के साथ तादात्म्य प्राप्त करने की असमता के कारण, वे नाटक एवं उपन्यास-कला के सर्वोच्च शिखर पर नही पहुँच सके। उनमें सर्जनात्मक प्रतिभा उच्चकोटि की थी, पर उनके वैयक्तिक अहं उन्हे कभी नही छोड़ती थी।[1] फिर भी फ्रांस के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के नेतृत्व करने तथा उसके सर्वोत्तम साहित्यकार के रूप में उनका नाम अमर रहेगा।

ह्यूगो की साहित्यिक मण्डली में अलफ्रेड डि मुसेट (१८१०-१८५७) एक तिभावान युवक था। अपनी उद्दाम काव्य-प्रतिभा के कारण उसने कम समय ही असंख्य कवितायें लिखी। वह बायरन की काव्य-शैली का अनुकरण करते मी बायरन की अपेक्षा सौन्दर्य-प्रियता तथा स्वच्छन्दता के ऊँचे परातलों पर र सका। जर्मन स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में हेइन की भांति मुसेट भी केंव

1. "A man so tremendously aware of himself as Hugo always cannot quite persuade us that his creatures have a life of their own." (Literature & Western Man · J. B. Priestley · P. 167.)

स्वच्छन्दतावाद के ह्रासोन्मुख काल का कवि था। उसने स्वच्छन्दतावाद की क्षिप्रतर उड़ानें अवश्य लीं; परन्तु वह स्वयं वहाँ असमंजस में पड़ गया था।

बेलजाक, जार्ज सेण्ड और अलाजेण्डर ड्यूमास फ्रांस के प्रसिद्ध स्वच्छन्दतावादी उपन्यासकार हैं।

४. रूस में स्वच्छन्दतावाद—

रूस में जर्मन, अंग्रेजी तथा फ्रेंच स्वच्छन्दतावादी कवि तथा कलाकारों का अध्ययन बड़ी तत्परता के साथ हुआ। परन्तु पुश्किन, लेरमोन्टोव तथा गोगोल आदि रूसी स्वच्छन्दतावादी कवि पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी आन्दोलनों से परिचित होते हुए भी अपने साहित्यिक कृतित्व के लिये रूस से बाहर के प्रभावों से अछूते रहे। इसी कारण रूस में स्वच्छन्दतावाद का अपना स्वतन्त्र विकास रहा। जार के निरंकुश शासन में किसी भी क्षेत्र में स्वच्छन्दता की भावना का पनपना असंभव-सा हो गया था। यहाँ जमीन्दार तथा मजदूरों के दो विशिष्ट वर्गों को छोड़कर अन्य किसी वर्ग का अस्तित्व नही के बराबर था। अन्य पाश्चात्य देशों की भाँति यहाँ मध्य वर्ग का समुचित विकास न हो पाया था, जिसने अन्यत्र स्वच्छन्दतावाद के उत्थान में योगदान दिया था। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी का रूस यूरोप के अन्य देशो से सभी क्षेत्रो में पिछड़ा हुआ था। धर्म तथा प्राचीनता के प्रेमी रूसी जनता के बीच स्वच्छन्दतावाद का आन्दोलन एक प्रकार से व्यर्थ ही जान पड़ता था। फिर भी पुश्किन, लेरमोन्टोव तथा गोगोल ने स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को साइबेरिया की मरुभूमि पर प्रवाहित किया। पुश्किन (१७८८-१८३६) रूसी स्वच्छन्दतावाद का सर्वश्रेष्ठ कवि था। "इगिनी वन्जिन" उसका महान काव्य है, जिसके पात्र-चित्रण में गहराई, वैविध्य तथा वर्णनों का वैभव मिलता है। यह काव्य स्वच्छन्दतावाद की महान कृतियों में माना जाता है। रूसी स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को आगे बढ़ाने में पुश्किन का सर्वाधिक योगदान रहा। रूसी स्वच्छन्दतावाद का युवक कवि लेरमोन्टोव ने (१८१४-१८४१) सन १८३७ में "आन दि डेथ आफ पुश्किन" (पुश्किन की मृत्यु पर) शीर्षक कविता लिखी जिसके कारण वह काकेशस् प्रान्त में सजा पाने के लिये निर्वासित किया गया। उसने अपने जीवन के अन्तिम चार वर्षों में अंग्रेजी कवि कीट्स की भाँति असाधारण काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया। उसका कथा-काव्य "दि डैमन" एक अर्ध शताब्दी तक जन-मानस पर छाया हुआ था। वह अपने जीवन तथा

इंग्लैण्ड में बायरन का रूसी संस्करण मालूम पड़ता था। वह एक प्रतिभा-शाली उपन्यासकार भी था।

रूसी स्वच्छन्दतावाद का अन्तिम कलाकार गोगोल (१८०९-१८५२) था। वह दुःखपूर्ण तथा कष्टप्रद जीवन व्यतीत करते हुए भी सर्जनात्मक क्षेत्र में प्रतिभावान था। वह महान उपन्यासकार था। "दि गवर्नमेंट इन्स्पेक्टर" "डेड सोल्स" (मृत आत्मायें) इसके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

५. निष्कर्ष

पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादों के विकास-क्रम में ये निम्नलिखित निष्कर्ष ध्यान देने योग्य है—

१ अंग्रेजी फ्रैंच तथा रूसी स्वच्छन्दतावादों का क्षेत्र केवल कला तथा साहित्य तक ही सीमित रहा, जब कि जर्मन स्वच्छन्दतावाद ने धार्मिक, सामाजिक एवं मानव-जीवन के हर एक क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला दिया।

२ जर्मनी और फ्रांस में स्वच्छन्दतावाद ने हर एक कला के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। परन्तु इंग्लैण्ड तथा रूस में स्वच्छन्दतावाद का प्रसार साहित्य (मुख्यतः काव्य) के क्षेत्र तक ही सीमित रहा।

३ अंग्रेजी तथा रूसी स्वच्छन्दतावादों की भाँति न होकर जर्मनी तथा फ्रांस में स्वच्छन्दतावाद ने एक सक्रिय आन्दोलन का स्वरूप धारण किया।

४. एक ओर जहाँ जर्मनी में गेटे तथा फ्रांस में विक्टर ह्यूगो स्वच्छन्दतावादी आन्दोलनों का नेतृत्व कर रहे थे तो इंग्लैण्ड तथा रूस में सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों का विकास बहुत कुछ व्यक्तिगत रूप से हुआ था और सभी अपने-अपने प्रान्त व समय में नेता ही थे।

५. जहाँ अन्य देशों के स्वच्छन्दतावादों के विकास का एक दीर्घ तथा निश्चित क्रम था, वहाँ फ्रांस के स्वच्छन्दतावाद का प्रारम्भ एक आकस्मिक विस्फोट के रूप में हुआ।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यूरोप के मुख्य साहित्यों में स्वच्छन्दतावाद का विकास क्रमशः हुआ है।

स्वच्छन्दतावाद के ह्रासोन्मुख काल का
विस्तृत रचनायें अवश्य कीं; परन्तु वह र

बेलजाक, जार्ज सेण्ड और अलाजेन्ट
वादी उपन्यासकार है।

४. रूस में स्वच्छन्दतावाद—

रूस में जर्मन, अंग्रेजी तथा फ्रेंच स्वच्छ
अध्ययन बड़ी तत्परता के साथ हुआ।
गोगोल आदि रूसी स्वच्छन्दतावादी कवि पा
से परिचित होते हुए भी अपने साहित्यिक १
प्रभावों से अछूते रहे। इसी कारण रूस में रू
विकास रहा। जार के निरंकुश शासन में ि
भावना का पनपना असंभव-सा हो गया था। यहा
विशिष्ट वर्गों को छोड़कर अन्य किसी वर्ग का अस्ति
पाश्चात्य देशों की भाँति यहाँ मध्य वर्ग का समुचि
जिसने अन्यत्र स्वच्छन्दतावाद के उत्थान में योगदा
अठारहवीं शताब्दी का रूस यूरोप के अन्य देशो
हुआ था। धर्म तथा प्राचीनता के प्रेमी रूसी जनत
का आन्दोलन एक प्रकार से व्यर्थ ही जान पड़ता
लेरमोन्टोव तथा गोगोल ने स्वच्छन्दतावादी काव्य-ध
मरुभूमि पर प्रवाहित किया। पुश्किन (१७८८-१८३६
का सर्वश्रेष्ठ कवि था। "इगिनी वन्जिन" उसका महान
चित्रण में गहराई, वैविध्य तथा वर्णनों का वैभव ि
स्वच्छन्दतावाद की महान कृतियों में माना जाता है।
काव्य-धारा को आगे बढ़ाने में पुश्किन का सर्वाधिक
स्वच्छन्दतावाद का युवक कवि लेरमोण्टोव ने
"आन दि डेथ आफ पुश्किन" (
जिसके कारण वह काकेसस् प्रान्त
उसने अपने जीवन के
असाधारण

मनोविज्ञान के क्षेत्र में कल्पना शब्द से साधारण मनुष्यों की कल्पना एवं कवि कल्पना दोनो का आशय लिया जाता है। डॉ० सुधा सक्सेना ने इसका विश्लेषण अत्यन्त सुचारु रूप से इस प्रकार किया है—मनोविज्ञान के अनुसार "अनुमान (सपोजल), दिवा-स्वप्न (डे० ड्रीम्स), स्वप्न (ड्रीम्स), विभ्रम (हेलुसिनेशन) और भ्रम (इल्यूजन) व स्मृति (मेमोरी) सभी कल्पना के क्षेत्र में आते हैं। मनोविज्ञान में कल्पना के दो रूप स्वीकृत हैं, निरुद्देश्य और सोद्देश्य। बिना किसी इच्छा अथवा प्रयास से उत्पन्न वे सम्भावनाएँ जो स्वत: ही हमारे मानस पटल पर आती रहती हैं निरुद्देश्य कल्पना कहलाती हैं। पर ऐसी निष्प्रयास और निष्प्रयोजन कल्पना को, जिसे स्वप्न, दिवा-स्वप्न आदि कहते हैं, काव्य में कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। दिवा स्वप्नो में एवं स्वप्नो में पाये जानेवाले असन्तुलन वायवीय शून्यता और असंगठन का कलात्मक कल्पना में कोई स्थान नहीं है। यद्यपि सौन्दर्य-निर्माण की धारणा स्वप्नो आदि में भी रह सकती है, पर सर्जनात्मकता के अभाव के कारण ऐसी कल्पना सौन्दर्य पूर्ण होकर भी कलात्मक कल्पना के क्षेत्र में नहीं आती। अनुमान, भ्रम, विभ्रम आदि को भी सर्जन और सौन्दर्य दोनो के सामंजस्य का अभाव होने के कारण कलात्मक कल्पना की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।"[1] इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रो में कल्पना की विभिन्न व्याख्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अत: बिम्ब-विधायिनी कल्पना के स्वरूप का आकलन करने के लिए विभिन्न चितकों के मत द्रष्टव्य है।

कल्पना की परिभाषाएँ—भारतीय चितको ने प्रतिभा को काव्य-निर्माण का मूल कारण मान लिया है। प्रतिभा दो प्रकार की होती है—कारयित्री और भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा की सहायता से कवि काव्य-निर्माण में सफल होता है तो भावयित्री प्रतिभा की सहायता से समीक्षक काव्य-कृति के अनन्त रहस्यो का उद्घाटन करता है। वास्तव में प्रतिभा के ये दोनो रूप कल्पना के संघटनात्मक एव भावात्मक रूपो के समकक्ष ठहरते है। अत: पाश्चात्य रचना में कल्पना को जो स्थान प्राप्त हुआ है, ठीक वही स्थान भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा का है।

'प्रतिभा' का शाब्दिक अर्थ है 'प्रकाश' अर्थात् मनःक्षितिज पर भावों का स्वत प्रकाश या प्रादुर्भाव। अभिनव गुप्त के गुरु भट्टतौत के अनुसार प्रतिभा चिर नवीन विचारो तथा मूर्तियो के निर्माण करने और उन्हें उपयुक्त शब्दों

---

१. कामायनी की बिम्बयोजना: डॉ० सुधा सक्सेना—प्रथम संस्करण पृ० ८६

के माध्यम से अभिव्यक्त करने की शक्ति है। नवीन अर्थोन्मीलन में समर्थ होने वाली प्रज्ञा ही 'प्रतिभा' है।[1] अभिनव गुप्त के अनुसार प्रतिभा अपूर्व वस्तुओं के निर्माण में प्रवृत्त प्रज्ञा ही है। इसी की सहायता से कवि रसावेश की गहनता एवं सौन्दर्य के कारण काव्य-सृष्टि में सफल हो जाता है।[2] डॉ० के० सी० पाण्डेय के अनुसार किसी सुन्दर बिम्ब को उसके समग्र एवं जीवन्त रूप में स्पष्टतया दर्शन करनेवाली शक्ति ही प्रतिभा है।[3] इस तरह भारतीय चिंतकों ने कवि-कर्म में सहायता पहुँचानेवाली शक्ति को प्रतिभा कहकर अपने को सन्तुष्ट कर लिया।

पाश्चात्य आलोचना में कल्पना के सम्बन्ध में विशद अध्ययन हुआ है। वहाँ के सभी चिंतकों ने कल्पना को काव्य की मूलभूत शक्ति मान लिया है। प्लेटो और अरस्तू ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से काव्य को अनुकृति मानते हुए भी किसी न किसी रूप में कल्पना-तत्व को स्वीकार किया है। शेक्सपियर ने कल्पना के सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट किया है। उनके शब्दों में कल्पना की व्याख्या इस प्रकार है :—

"आवर्त में पड़ भ्रमण करते देखता है नेत्र कवि का
स्वर्ग से धरातल तक, धरातल से स्वर्ग तक,
औ' कल्पना की शक्ति से साकार होकर रूप पाती वस्तुएँ अज्ञात
उन्हें कवि की लेखनी आकार देती

---

१. "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता
तदनुप्राणनाजीवद्वर्णनानिपुणः कविः"

(हेमचन्द्र—काव्यानुशासन—पृ०३ पर उद्धृत लुप्तप्राय 'काव्य-कौतुक' ग्रंथ में निर्दिष्ट लक्षण)

२. "प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा।
तस्याः विशेषो रसावेशवैशद्य सौन्दर्यकाव्य निर्माण क्षमत्वम्"

—लोचन-पृ० २६

3. "The power of clear visualisation of the aesthetic image in all its fullness and life is technically called 'Pratibha'." Indian Asthetics.—P. 151.

और देती शून्य को फिर एक परिचित नीड़
औ' एक परिचित नाम।[1]

शेक्सपियर भी कल्पना को कवि की एक ऐसी दृष्टि मानते हैं जो स्वर्ग और धरती के बीच भ्रमण करती है तथा वायवीय शून्यता को आकार प्रदान करती है। कविवर ड्राइडन के अनुसार कल्पना ऐसी शक्ति है, 'जो एक तेज शिकारी कुत्ते की तरह स्मृति-क्षेत्र पर ऐसे भावों की खोज में दौड़ मारती है जिनके द्वारा वह अनुभूतियों को अच्छी तरह प्रदर्शित कर सके।'[2] इस परिभाषा में ड्राइडन ने कल्पना के सृजनात्मक स्वरूप तथा उसके साथ भाव तथा अनुभूति के सम्बन्ध की ओर संकेत किया। रोमांटिक कवियों ने काव्य-सर्जना में कल्पना की महत्ता को पहचान कर उसकी प्रकृति पर पर्याप्त विचार किया। रोमांटिक-युग से पूर्व कल्पना को आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हुआ। रोमांटिक कवियों में ब्लेक, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, शैली तथा कीट्स ने कल्पना के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट किया। ब्लेक के अनुसार केवल एक ही शक्ति काव्य का निर्माण कर सकती है और वह शक्ति है कल्पना या दिव्य दृष्टि।[3] ब्लेक की इस परिभाषा में कल्पना का कोई स्पष्ट रूप निखर कर नहीं आता। उसने कल्पना को आध्यात्मिकता के रंग में रंग दिया है। कविवर वर्ड्सवर्थ ने अनन्त शक्ति, भावों एवं विचारों से समन्वित विशुद्ध अन्तर्दृष्टि को कल्पना माना।[4] वर्ड्सवर्थ

---

1. The poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven,
And, as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes, and gives to airy nothing
A local habitation and a name."
William Shakespeare—"A Mid Summer's Night's dream."—Act V, Scene I.
2. लीलाधर गुप्त : पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त : पृ ५१
3. "One power alone makes a poet, Imagination, the Divine Vision"—Blake. Qt. by C B.Bowra—Romantic imagination. P. 2.
4. Imagination—is but another name for absolute power and clearest insight, amplitude of mind, and reason in her most exalted mood."
—Ibid. P. 19.

धारणा विद्वान समीक्षक प्रेसकाट की भी है। उनका मत इस प्रकार है—'संक्षेप मे कल्पना मानसिक चक्षु है जो चर्म-चक्षु का मानसिक या आदर्शात्मक रूपान्तर है। चर्म-चक्षु जब विश्राम ग्रहण करता है तब मानसिक चक्षु का उपयोग स्वाभाविक रूप से किया जाता है। इसका कारण यह है कि मन अपने ही दृष्टिकोण से देखता है। वह अपनी दृष्टि के अनुकूल आदर्शमयी वस्तुओं का आकलन करता है। यह मानसिक चक्षु ही कवि या द्रष्टा का मुख्य उपकरण है।'[1] इसमें प्रेसकाट ने कल्पना की दृश्य-संवेदना पर अधिक बल दिया है। आधुनिक काल में हिन्दी के कुछ विद्वानों ने भी कल्पना पर अपने मत व्यक्त किये। उनके ऊपर पश्चिम की कल्पना-सम्बन्धी मान्यताओं का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। हिन्दी आलोचना मे सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल ने कल्पना की विशद व्याख्या प्रस्तुत की। उनके अनुसार "जो वस्तु हम से अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव कराना उपासना है। साहित्य वाले इसे भावना कहते है और आजकल के लोग कल्पना। जिस प्रकार भक्ति के लिए ध्यान और उपासना आवश्यक होती है उसी प्रकार भावो के प्रवर्तन के लिए भावना या कल्पना अपेक्षित होती है।"[2] शुक्लजी के अनुसार भावोद्रेक के द्वारा परिचालित रूप विधान करनेवाली सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि ही कल्पना है। भाव-शून्य रूप-विधान की क्रिया को उन्होंने कवि-कल्पना के अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया। बलदेव उपाध्याय के मतानुसार "यह कल्पना नैयायिकों के सविकल्प प्रत्यक्ष का प्रतिनिधि है जिसमें इन्द्रियजन्य अनुभव का परस्पर तारतम्य मिलाकर बुद्धि उस पदार्थ को एक नवीन नाम प्रदान करती है।"[3] उपाध्यायजी ने इन्द्रियजन्य अनुभूतियों की अनन्त संगतियों के आधार

1. "The imagination is, in a word, the eye of the mind—the mental or ideal counterpart of the bodily eye; and it is employed most readily when the bodily eye is in abeyance or at rest. For the mind also sees—but it sees in its different way and it beholds its own ideal objects. This eye of the mind is the characteristic organ of the poet and the visionary."
F. C. Prescott The Poetic Mind. P. 139.

२ चिन्तामणि—भाग—२। रामचन्द्र शुक्ल। पृ० ३११

३ भारतीय साहित्य शास्त्र प्रथम खण्ड बलदेव उपाध्याय। प्रथम संस्करण। पृ० ४३३

पर नवीन सृष्टि करनेवाली बुद्धि को कल्पना के अन्तर्गत ही समाहार कर दिया है। बाबू गुलाबराय के मतानुसार 'कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं।'[1] इनकी परिभाषा पर पाश्चात्य चिन्तकों का प्रभाव स्पष्ट है।

कल्पना सम्बन्धी भारतीय तथा पाश्चात्य मान्यताओं पर विचार करने के पश्चात् समष्टि रूप में यह कहा जा सकता है कि कल्पना कवि या कलाकार की एसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है जो काव्य के भावोद्रेक में सहायक होकर नवीन सृष्टि करने के साथ-साथ उसमें सार्वभौमिक सत्य एवं सौन्दर्य का समावेश करती है।

कल्पना की कोटियाँ—कोलरिज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बयाग्राफिया लिटरेरिया' में कल्पना की दो कोटियो का उल्लेख किया है। वे हैं—(१) प्राथमिक कल्पना प्राइमरी इमेजिनेशन), (२) निर्माण कुशला कल्पना (सेकेण्डरी इमेजिनेशन)। दोनो के भेद को स्पष्ट करते हुए कोलरिज ने लिखा कि प्राथमिक कल्पना आत्मज्ञान पर आधारित रहती है। मूलत: यह कल्पना रूपो एव बिम्बों का प्रत्यक्षीकरण मात्र है। यही मानवीय विचारों की प्रतिनिधि है। कोलरिज के अनुसार काव्य-सर्जना में कवि की सहायता करनेवाली शक्ति मूर्तिविधायिनी या निर्माण कुशला कल्पना है। इसी शक्ति के द्वारा कवि या कलाकार काव्य-सर्जना के विभिन्न तत्वो का एकीकरण करता है। यह कल्पना परस्पर विरोधी एवं विस्वर गुणो के संतुलन में प्रकट होती है। इसी निर्माण कुशला कल्पना को कोलरिज ने सेकण्डरी इमेजिनेशन या इमेम्प्लास्टिक इमेजिनेशन कहा है।[2] कोलरिज ने उपर्युक्त दोनों कल्पनाओं के भेद को स्पष्ट किया। उनका कथन है कि दोनो कल्पनाओ की स्थिति एवं उनके कार्य-व्यापार में भारी अन्तर है। निर्माण कुशला कल्पना संकल्पात्मक-शक्ति के अनुरूप कार्य करती है, परन्तु प्राथमिक कल्पना का कार्य असकल्पित होता है और उसके प्रत्यक्षी-

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन : गुलाबराय। पृ० ६७

2. "......imagination is a 'synthetic' a 'permeative' and a 'blending fusing power'. At other times Coleridge describes the imagination as an assimilative power".

M. H Abrams.—The Mirror and the Lamp : Romantic theory and critical tradition. P. 163.

करण पर किसी का नियंत्रण नहीं है।[1] संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि कोलरिज की प्राथमिक कल्पना केवल विचार शक्ति है और निर्माण कुशल कल्पना ही विशुद्ध काव्यात्मक कल्पना है जिसमे सर्जन और सौंदर्य की विशेषताएं समाहित हो जाती हैं।

कल्पना का एक और भेद विकल्पना (फैन्सी) है। यह काव्यात्मक कल्पना का एक प्रमुख अंश है। वह काव्यात्मक कल्पना से अभिन्न है, परन्तु उन दोनो में पर्याप्त अन्तर भी है। वर्ड्सवर्थ और कोलरिज ने उन दोनो के साम्य और वैषम्य पर प्रकाश डाला है। कोलरिज के अनुसार कल्पना ऐसी शक्ति है जो भावो का सामजस्य स्थापित करके उनका एकीकरण करती है। विकल्पना का कार्य इससे भिन्न इसलिए है कि उसका कार्य केवल कुछ निश्चित, नियत और स्थिर वस्तुओ के साथ खेलने का है, जो देश काल से मुक्त स्मृति का ही एक प्रकार है।[2] कोलरिज के अनुसार विकल्पना विगत ऐन्द्रिय अनुभूतियो की नवीन व्यवस्था करती है और उसका उत्पादन सामग्री सर्जनात्मक प्रक्रिया का फल न होकर केवल संयोजना-प्रक्रिया का परिणाम है।[3] विकल्पना मे कल्पना की भांति एकीकरण की शक्ति नहीं है। विकल्पना की तुलना में कल्पना पर मन का नियन्त्रण अधिक है। कल्पना और विकल्पना में गुणात्मक अन्तर भी पर्याप्त है। दोनो मन की विभिन्न स्तरो की अभिव्यक्तियाँ है। कोलरिज के अतिरिक्त और कुछ अंग्रेजी चिंतको ने विकल्पना और कल्पना के अन्तर को स्पष्ट करने की

---

1. "It is like primary imagination in kind and differs only in degree and in the mode of its operation. The difference would seem to mean that it acts in accordance with the will. The primary imagination is involuntary, we perceive whether we wish or not."
Sir Phillip Magnus English Studies

2. "Fancy has no other counters to play with but fixities and definites, The fancy is indeed no other than a mode of memory emancipated from the order of time and space."—Biographia Literaria S T Coleridge, P 146

3. "It (Fancy) simply constructs new arrangements of past sense experience and its products are purely the result of an associate and not a creative process."—
Sir Phillip Magnus English studies.

पर नवीन सृष्टि करनेवाली बुद्धि को कल्पना के अन्तर्गत ही समाहार कर दिया है। बाबू गुलाबराय के मतानुसार 'कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं।[१] इनकी परिभाषा पर पाश्चात्य चिन्तकों का प्रभाव स्पष्ट है।

कल्पना सम्बन्धी भारतीय तथा पाश्चात्य मान्यताओं पर विचार करने के पश्चात् समष्टि रूप में यह कहा जा सकता है कि कल्पना कवि या कलाकार की एसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है जो काव्य के भावोद्रेक में सहायक होकर नवीन सृष्टि करने के साथ-साथ उसमें सार्वभौमिक सत्य एवं सौन्दर्य का समावेश करती है।

कल्पना की कोटियाँ—कोलरिज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बयाग्राफिया लिटरेरिया' में कल्पना की दो कोटियों का उल्लेख किया है। वे है—(१) प्राथमिक कल्पना प्राइमरी इमेजिनेशन), (२) निर्माण कुशला कल्पना (सेकेण्डरी इमेजिनेशन)। दोनो के भेद को स्पष्ट करते हुए कोलरिज ने लिखा कि प्राथमिक कल्पना आत्मज्ञान पर आधारित रहती है। मूलतः यह कल्पना रूपो एव बिम्बो का प्रत्यक्षीकरण मात्र है। यही मानवीय विचारो की प्रतिनिधि है। कोलरिज के अनुसार काव्य-सर्जना में कवि की सहायता करनेवाली शक्ति मूर्तिविधायिनी या निर्माण कुशला कल्पना है। इसी शक्ति के द्वारा कवि या कलाकार काव्य-सर्जना के विभिन्न तत्वो का एकीकरण करता है। यह कल्पना परस्पर विरोधी एवं विस्वर गुणो के संतुलन में प्रकट होती है। इसी निर्माण कुशला कल्पना को कोलरिज ने सेकण्डरी इमेजिनेशन या इसेम्प्लास्टिक इमेजिनेशन कहा है।[२] कोलरिज ने उपर्युक्त दोनों कल्पनाओं के भेद को स्पष्ट किया। उनका कथन है कि दोनो कल्पनाओं की स्थिति एवं उनके कार्य-व्यापार में भारी अन्तर है। निर्माण कुशला कल्पना संकल्पात्मक-शक्ति के अनुरूप कार्य करती है, परन्तु प्राथमिक कल्पना का कार्य असंकल्पित होता है और उसके प्रत्यक्षी-

१. सिद्धान्त और अध्ययन : गुलाबराय। पृ० ६७

2. "......imagination
'blending fusing :
the
M. H A
theory and

(२) उत्पादक कल्पना (प्रोडक्टिव इमेजिनेशन) (३) सौन्दर्यमूलक कल्पना (ईस्थेटिक इमेजिनेशन)। इन तीनों का संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है—

(१) सम्मेलक कल्पना :—यह कल्पना मानव-मस्तिष्क के समक्ष पहले से ही वर्तमान पदार्थों का केवल मिश्रण प्रस्तुत करती है। उसका कार्य-व्यापार स्वतन्त्र नहीं होता। उन पदार्थों में चेतना के अभाव के कारण जीवन-शक्ति का संचार नहीं होता। प्रायः उन पदार्थों के चित्र निर्जीव होते हैं। भारतीय दृष्टि से यह स्मृति का ही एक विशिष्ट रूप है।

(२) उत्पादक कल्पना :—काण्ट के मतानुसार उत्पादक कल्पना ऐन्द्रिय संवेदनाओं का संघात मात्र नहीं है, अपितु उन संवेदनाओं द्वारा उत्पन्न एक स्वतन्त्र अनुभूति है। 'यह मन को इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थों द्वारा संवेदनाओं की सृष्टि करने की शक्ति प्रदान करती है। वह संवेदना एवं ग्राह्यता को एक दूसरे के निकट लाकर मन को उसके तर्क-संगत कार्य में प्रवृत्त होने को बाध्य करती है।'[1]

(३) सौन्दर्यमूलक कल्पना :—काण्ट के अनुसार इस कल्पना का सम्बन्ध सौंदर्य-बोध से है। यही कल्पना कलाकार में सौंदर्यानुभूति की जननी है। कवि या कलाकार इसी कल्पना द्वारा नवीन पदार्थों, नवीन बिम्बों तथा नूतन अनुभूतियों को जन्म देता है। यह सौंदर्यमूलक कल्पना उत्पादक कल्पना द्वारा गृहीत ऐन्द्रिय संवेदनाओं का विश्लेषण एवं विभाजन करने के अतिरिक्त उनका नव-निर्माण कर एक अपूर्व सौंदर्य की रूपरेखा मानस पटल पर अंकित कर देती है।

विद्वान समीक्षक बलदेव उपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय साहित्य शास्त्र' में काण्ट, कोलरिज तथा भारतीय चिंतकों से प्रतिपादित कल्पना की विभिन्न कोटियों की तुलना निम्नांकित तालिका द्वारा व्यक्त किया है[2]—

---

1. "It enables the mind to create perceptions from the raw-materials of sense data and by bringing sensation and under standing together enables the latter to cary on its work of discursive reasoning."

—English Studies: Phillip Magnus. P. 86.

2. भारतीय साहित्य शास्त्र-प्रथम खण्ड : बलदेव उपाध्याय।

प्रथम संस्करण—पृ० ४३

पैदा की। वर्ड्सवर्थ ने कहा कि विकल्पना ऐसा सादृश्य विधान है जिसका संगठन गंभीरता के अभाव में होता है।[1] ली हन्ट की यह धारणा है कि 'कल्पना का सम्बन्ध गंभीर चिन्तनप्रधान काव्य से है तो विकल्पना का सुखोत्पादक काव्य से।[2] आलोचक स्टीफेन के अनुसार विकल्पना ऊपरितल की सारूप्यताओं को ग्रहण करती है तो कल्पना उनमें अन्तर्निहित गहनतम सत्यों का अन्वेषण करती है।[3] एमरसन के अनुसार विकल्पना का सम्बन्ध रंगों से है तो कल्पना का रूप से।[4] इन सभी के विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि कल्पना किसी उद्देश्य प्राप्ति के लिए किया गया समन्वय विधान है तो विकल्पना समन्वय-विधान द्वारा मौलिक रूपों की उत्पत्ति करती है। इस भेद के कारण दोनों के प्रभाव में अधिक अन्तर आ जाता है। मोतियों के हार तथा एक मोती में जो अन्तर है वही अन्तर कल्पना और विकल्पना में है। एक में संगठन का प्राधान्य है तो दूसरे में विशृंखलता का। विकल्पना का भी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। विकल्पना काव्य-निर्माण में कल्पना की सहायता करती है। हार में अलग-अलग मोतियों का भी मूल्य है। उनके बिना हार की सत्ता असंभव है। इस तरह कवि की कल्पना रूपी मानसिक शक्ति तभी कार्य कर सकती है जब शीघ्र गति से अनेक मानसिक शक्तियाँ उसे सहयोग प्रदान करें। इस प्रकार कल्पना और विकल्पना दोनों बिम्ब-विधान में समर्थ हैं। वास्तव में विकल्पना कल्पना के सार्वभौमिक व्यापार में सहायता पहुँचाती है। वह कल्पना का आरम्भिक रूप है।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक तथा विचारक काण्ट ने कल्पना की तीन श्रेणियाँ मानी हैं, वे हैं—(१) सम्मेलक कल्पना (रिप्रोडक्टिव इमेजिनेशन),

---

1. 'Fancy is an analogy coming *short of seriousness.*"
—*Wordsworth.* Preface of 1815.

2. "*Imagination belongs to tragedy* or the serious muse; *fancy to the comic*" |
—Leigh Hunt: Imagination & Fancy.—

3. "...... fancy deals with the superficial resemblences and imagination with the deeper truths that underlie them"
L. Stiphen: Hours in a Library.

4. "Fancy is related to color, *imgination to form.*"
Emerson : Letters and Social Aims. P. 29,

सहानुभूतिपूर्वक प्रस्तुत कर सकना है। अंग्रेजी में इसे सहानुभूतिपूर्ण कल्पना (सिम्पेथेटिक इमेजिनेशन) कहा गया है।

६ मौलिक उद्भावना (ओरिजिनल फार्मुलेशन) करना ही कल्पना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। इसी के कारण ही साहित्य में नवीन सृष्टि होती है। कल्पना का यह पक्ष एकीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। कोलरिज ने कल्पना के इस कार्य को दृष्टिपथ में रखते हुए कहा है कि कल्पना वह संश्लेषात्मक एवं ऐन्द्रजालिक शक्ति है, जो अपने को विरोधी स्थितियों तथा विषम गुणों के सामंजस्य एवं संतुलन में प्रकट करती है।

कल्पना के विभिन्न कार्यों की व्याख्या कोलरिज ने प्रस्तुत की। उन्होंने उसके (१) ऐक्य विधान, (२) सारग्रहण, (३) समाहरण, (४) संग्रहण, (५) संस्मरण और (६) संगठन, छ कार्यों का उल्लेख किया।[1] कल्पना के समस्त क्रिया-व्यापार इनमें समाहित हो जाते हैं। कल्पना का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ऐक्य विधान है जो भिन्नताओं तथा असंगतियों में एकता की स्थापना करता है। काव्य के क्षेत्र में कल्पना अनेक भावगत भिन्नताओं को हटाकर एकता स्थापित करती है। कल्पना जीवन और जगत् के विविध दृश्यों या रूपों को उनके प्रकृत रूप में ग्रहण नहीं करती, वरन् उनका संकलन कर सारग्रहण करती है। उसके पश्चात् कल्पना अपनी समाहार शक्ति से सारग्रहण द्वारा गृहीत रूपों तथा दृश्यों में आवश्यकतानुसार जोड़-तोड़ और काँट-छाँट करती है। कल्पना अपनी संग्रहण शक्ति द्वारा दो या उससे अधिक वस्तुओं के भिन्न-भिन्न उपादानों या व्यापारों को ग्रहण करके प्रस्तुत करती है। वह जगत् की विभिन्न वस्तुओं को एकसूत्र में पिरोकर उन्हें मानसिक जगत् की वस्तु बना देती है। कल्पना का और एक कार्य संस्मरण भी है जिसके द्वारा वह स्मृति में पड़े हुए अतीत के अनुभवों, मूर्तियों तथा बिम्बों को ही एक नये परिवेश के साथ काव्य में प्रस्तुत करती है। कल्पना का अंतिम तथा महत्वपूर्ण कार्य संगठन है। कल्पना अपने इस कार्य के द्वारा कल्पनागत औचित्य की रक्षा करती है। कल्पना का यह कार्य काव्य के सभी उपकरणों में एक कसावट लाती है। कल्पना औचित्य के आधार पर ही संगठन करती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कल्पना काव्य-सर्जना के प्रत्येक क्षेत्र में कवि की सहायता करती है।

---

1. "It unites, it abstracts, it modifies, it aggregates, it vokes, it combines."—Biographia Literaria, Coleridge P.154.

सहानुभूतिपूर्वक प्रस्तुत कर सकता है। अंग्रेजी में इसे सहानुभूतिपूर्ण कल्पना (सिम्पेथेटिक इमेजिनेशन) कहा गया है।

६ मौलिक उद्भावना (ओरिजिनल फार्मुलेशन) करना ही कल्पना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। इसी के कारण ही साहित्य में नवीन सृष्टि होती है। कल्पना का यह पक्ष एकीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। कोलरिज ने कल्पना के इस कार्य को दृष्टि मे रखते हुए कहा है कि कल्पना वह संश्लेषणात्मक एवं ऐन्द्रजालिक शक्ति है, जो अपने को विरोधी स्थितियां तथा विषम गुणों के सामंजस्य एवं संतुलन में प्रकट करती है।

कल्पना के विभिन्न कार्यों की व्याख्या कोलरिज ने प्रस्तुत की। उन्होंने उसके (१) ऐक्य विधान, (२) सारग्रहण, (३) समाहरण, (४) संग्रहण, (५) संस्मरण और (६) संगठन, छः कार्यों का उल्लेख किया।[1] कल्पना के समस्त क्रिया-व्यापार इनमें समाहित हो जाते है। कल्पना का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ऐक्य-विधान है जो भिन्नताओं तथा असंगतियों में एकता की स्थापना करता है। काव्य के क्षेत्र में कल्पना अनेक भावगत भिन्नताओं को हटाकर एकता स्थापित करती है। कल्पना जीवन और जगत् के विविध दृश्यों या रूपों को उनके प्रकृत रूप में ग्रहण नहीं करती, वरन् उनका संकलन कर सारग्रहण करती है। उसके पश्चात् कल्पना अपनी समाहार शक्ति से सारग्रहण द्वारा गृहीत रूपों तथा दृश्यों मे आवश्यकतानुसार जोड़-तोड़ और काँट-छाँट करती है। कल्पना अपनी संग्रहण शक्ति द्वारा दो या उससे अधिक वस्तुओं के भिन्न-भिन्न उपादानों या व्यापारों को ग्रहण करके प्रस्तुत करती है। वह जगत् की विभिन्न वस्तुओं को एकसूत्र में पिरोकर उन्हें मानसिक जगत् की वस्तु बना देती है। कल्पना का और एक कार्य संस्मरण भी है जिसके द्वारा वह स्मृति में पड़े हुए अतीत के अनुभवों, मूर्तियों तथा बिम्बों को ही एक नये परिवेश के साथ काव्य में प्रस्तुत करती है। कल्पना का अंतिम तथा महत्वपूर्ण कार्य संगठन है। कल्पना अपने इस कार्य के द्वारा कल्पनागत औचित्य की रक्षा करती है। कल्पना का यह कार्य काव्य के सभी उपकरणों में एक कसावट लाती है। कल्पना औचित्य के आधार पर ही संगठन करती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कल्पना काव्य-सर्जना के प्रत्येक क्षेत्र में कवि की सहायता करती है।

---

1. "It unites, it abstracts, it modifies, it aggregates, it evokes, it combines."—Biographia Literaria, Coleridge P.154.

मनोविज्ञान के क्षेत्र में बिम्ब शब्द का अर्थ होता है, "मानसिक पुनर्निर्माण" (मेन्टल रिक्येशन)। मनोवैज्ञानिक बिम्ब के सम्बन्ध में विश्वकोष में इस प्रकार लिखा गया है—"बिम्ब चेतन स्मृतियाँ है जो अनुभूति की मौलिक उत्तेजना के अभाव में पूर्व प्राप्त अनुभूति का पुनरुत्पादन सम्पूर्ण या आंशिक रूप में करती है।"[1] इस परिभाषा के अन्तर्गत बिम्ब में उत्तेजना का पुनः अनुभूत कराने के तत्व पर जोर दिया गया है। विश्वकोष में एक अन्य स्थान पर स्पष्ट किया गया है कि "बिम्ब-निर्माण सम्पूर्ण रूप से एक मानसिक व्यापार है और बिम्ब मानसिक चक्षु से देखी जानेवाली वस्तु है।"[2] मनोविज्ञान के क्षेत्र में बिम्ब के स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मुख्यत बिम्ब का प्रयोग पश्चात् प्रतिमा (आफ्टरइमेज) के रूप मे होता है। पश्चात् प्रतिमा वह है जिसका जन्म दृश्य-संवेदना से होता है। सामान्य रूप से देखी या अनुभूत की हुई वस्तु या दृश्य मे मानसिक संवेदना उत्पन्न हो जाती है यह मानसिक संवेदना उत्तेजना के रूप को ग्रहण कर प्रत्यक्ष वस्तु या दृश्य के दर्शन से विचारो तथा भावो को सृष्टि करती है। उस प्रत्यक्ष वस्तु के आँखो के समक्ष न रहने पर भी उस वस्तु का मानसिक सवेदना अक्षुण बनी रहती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष वस्तु की प्रतिमा को सवेदना के बल पर वस्तु के अभाव मे भी मानस में आकलन किया जाता है। इसी प्रतिमा को मनोविज्ञान में पश्चात् प्रतिमा कहते है। पश्चात् प्रतिमा में व्यक्ति की सकल्पशक्ति का महत्व बहुत कम रहता है। मनोविज्ञान में बिम्ब का एक दूसरा रूप मिलता है। वह काल्पनिक प्रतिमा (इमेजिनेशन इमेज) या प्राथमिक स्मृति बिम्ब (प्राइमरी मेमोरी इमेज) है। जब किसी प्रत्यक्ष वस्तु के अभाव में उसकी दृश्य-संवेदना भी नही होती तो मन अपनी संकल्प-शक्ति से किसी पूर्वानुभूत वस्तु को अपनी कल्पना में प्रत्यक्ष कर लेता

---

1. Images are "conscious memories which reproduce a previous perception, in whole or in part, in the absense of the original stimulues to the perception."
Ency. Brit. Vol. 12. P 103.

2. "The strictly psychological use of the term 'image' is... for a purely mental idea, which is taken as being observed by the eye of mind."—Ency. Brit. Vol. 14. P. 323.

है। उस समय यह काल्पनिक मूर्ति-विधान काल्पनिक बिम्ब कहा जाता है।[1] यह काल्पनिक बिम्ब मन की संकल्प-शक्ति पर निर्भर होता है। लम्बी अवधि के बाद भी मानस-पटल पर वस्तु का प्रत्यक्षीकरण इस काल्पनिक बिम्ब के द्वारा होता है। अत. संक्षेप में मनोविज्ञान में प्रयुक्त बिम्ब का अर्थ यह है—प्रत्यक्ष वस्तुओं के अभाव में भी उनका मानस में प्रत्यक्षीकरण।[2]

काव्यात्मक बिम्ब का मनोवैज्ञानिक बिम्ब के साथ सम्बन्ध होते हुए भी उन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। मनोवैज्ञानिक बिम्ब वस्तु की प्रतिच्छाया या प्रतिकृति मात्र है तो काव्यात्मक बिम्ब में नवीन सृजन की शक्ति है। मनोवैज्ञानिक बिम्ब एक निर्जीव एवं अनुभूति रहित वस्तु है तो काव्यात्मक बिम्ब निर्जीव वस्तुओं को सजीव एवं सप्राण बनाकर उन्हें एक स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करता है।

काव्यात्मक बिम्ब के स्वरूप-निर्धारण में मनोवैज्ञानिक बिम्ब सहायता पहुँचाता है। काव्यात्मक बिम्ब के स्वरूप का आकलन करने के लिए विद्वानों द्वारा उसके सम्बन्ध में दी दी हुई परिभाषाएँ द्रष्टव्य है।

बिम्ब की परिभाषा——बिम्ब का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसे किसी भी परिभाषा में बाँधना सुलभ नहीं है। बिम्ब के स्वरूप के सम्बन्ध मे विद्वानों मे पर्याप्त मतभेद है। पाश्चात्य विद्वानो ने बिम्ब के स्वरूप के सम्बन्ध में विशद चर्चा की है। अंग्रेजी की सुप्रसिद्ध लेखिका स्पर्जियन ने बिम्ब के विषय में लिखा है कि काव्य में प्रयुक्त हरेक उपमा, रूपक, कल्पना-चित्र जिसे कवि अपने विचारो तथा भावो के रंग में रंगकर प्रस्तुत करता है तो उन्हें बिम्ब कह सकते है। व्यापक रूप में समानता प्रदर्शित करने के लिए लाये जानेवाले प्रत्येक रूपक और उपमा बिम्ब के अन्तर्गत समाहित हो जाता है। उनके अनुसार

---

1. "Such a representation of the object by an effort of the will, when the stimuli ceased to act on the senses and when the excitations too no longer exist is called a primary memory image."

A critical study of Shelley's imagery and revaluation of his poetic arts. (original thesis)—Dr. J. B. Singh P.3.

2. It may be noted that the image in this sense refers to the revival however partial or imperfect of a perceptual experience.—Ibid. P.3.

सादृश्य विधान के सभी रूप बिम्ब कहे जा सकते है। यदि वे किसी भाव, अनुभूति या विचार से अनुप्राणित हो।[1] स्टीफेन ब्राउन ने अपनी पुस्तक 'दि वर्ल्ड आव इमैजरी' में लिखा है कि भाषा के सभी अलंकार और मूर्तिविधान बिम्ब के सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत रखे जा सकते है। बिम्ब भावो या विचारो के लिए प्रयुक्त ऐन्द्रिय गुणो से युक्त वस्तु विधान है जो प्राय. शब्दों के माध्यम से प्रकट होता है। बिम्ब मुख्य वस्तु का प्रतिरूप है जो सारूप्यता में भी व्यक्त हो सकता है या उसके बिना भी प्रकट हो सकता है।[2] विद्वान समीक्षक ने इस प्रकार बिम्ब को व्यापकता प्रदान करते हुए सादृश्य विधान, विचारात्मक एवं भावात्मक अनुभूतियों का प्रकाशन तथा ऐन्द्रिय ग्राह्यता आदि को बिम्ब के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इमैजरी आफ कीट्स एण्ड शैली' में एच० फोगेल ने बिम्ब के सवेदनात्मक गुण को सर्वाधिक महत्व दिया है। उनका कथन है कि मनोवैज्ञानिक एव आलोचको में काव्य को ऐन्द्रिय संवेदना की अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण मानने की धारणा है। यह सवेदना की अनुभूति दृश्य, श्रवण, स्पर्श एव स्वाद के विभिन्न माध्यमो से प्रकट होती है। यह बिम्ब मन के समस्त विश्वसनीय और व्यापक रूप में मौलिक सवेदनाओं को प्रस्तुत करता है।[3] इस प्रकार फोगेल ने बिम्ब के सवेदनात्मक गुण पर पर्याप्त

1. Shakespeare's imagery . Spurgeon. P. 5

2. "Imagery may be defined as words or phrases denoting a sense perceptible object but some other object of thought belonging to a different order and category of being. The sense perceptible object or image in question becomes a medium for conveying to the mind some notion regarding that other object of thought. The image is momentarily substitute for the object. This substitution may involve a comparison or it may not." —Stephen J. Brown P 2

3 "To psychologists and to many critics imagery in poetry is the expression of sense—experience channelled through sight, hearing, smell, touch and taste, through these channels impressed upon the mind and set forth in verse in such fashion as to recall as vividly and faithfully as possible the original sensations." —The Imagery of Keats and Shelley, Chapter one, Fogle. P 5.

प्रकाश डाला है। सी० डे० लेविस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पोयटिक इमेज' में बिम्ब की परिभाषा इस प्रकार दी है—काव्यात्मक बिम्ब शब्दों द्वारा प्रस्तुत ऐन्द्रिय चित्र है। वह कुछ हद तक मानवीय भावना प्रेरित रूपकात्मकता को अपने में स्थान देता है। इसके साथ-साथ वह एक विशेष प्रकार की भावना से आपूरित होकर उसी भावना को सहृदय संवेद्य बना देता है।[१] ब्लिस पेरी के अनुसार बिम्बों का निर्माण शब्दों से नहीं, अपितु नग्न ऐन्द्रिय उत्तेजना से होता है।[२] एडिथ रेकर्ट का कथन है कि बिम्ब-विधान अनुभूति को मानसिक चित्रों द्वारा अभिव्यक्त करने की एक पद्धति है।[3] काफमैन के अनुसार बिम्ब एक एकीकृत विचारों का आवर्त या स्तवक है जिसमें शक्ति का संचार होता है।[४] आगे जाकर उन्होंने बिम्ब की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की—'बिम्ब उसी को कहते है जो किसी एक क्षण की अवधि में बौद्धिक एवं भावात्मक सम्मिश्रण प्रस्तुत करता है।[५] कवि तथा समीक्षक कोलरिज ने बिम्ब की समग्र व्याख्या प्रस्तुत की। उनका कथन है कि 'बिम्ब, उदाहरण के लिए किसी दृश्य-बिम्ब, किसी संवेदना की अनुकृति, कोई भाव, कोई मानसिक घटना, कोई

---

1. "... ... . the poetic image is a more or less sensuous picture in words, to some degree metaphorical, with an undertone of human emotion in its context, but also charged with and releasing into the reader a special poetic emotion or passion."

—Poetic Image. C Day Lewis. P. 22.

2. "The images were not made of words at all, but were naked sense-stimulus"—A study of Poetry : Bliss Perty. P. 94-95.

3. "Imagery is a mode of expressing experience in the form of mental pictures." —New methods for the study of Literature : Miss Edith Reckert. P. 27.

4. "It (image) is a vortex or cluster of fused ideas and is endowed with energy." Imagism : Stanley K. Coffman. Ist. Edition, P. 132.

5. "An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time." Ibid. P. 145.

अलंकार या वस्तुओं की तुलनात्मक इकाई तक हो सकता है।"[1] अक्षौरी ब्रजनन्दन प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'काव्यात्मक बिम्ब' में बिम्ब के स्वरूप पर इस प्रकार प्रकाश डालते है—'काव्य का जो संवेद्य है वह अपने यथार्थ रूप में न मात्र अनुभूति है और न मात्र कल्पना, बल्कि वह अनुभूति एवं कल्पना की उस एकीकृत समग्रता की अन्विति है जो बिम्बो के रूप में काव्य में प्रकटित होती है। एक कविता में हम कल्पना और अनुभूति को अलग-अलग कर नही देख सकते। काव्य यथार्थत कवि-कल्पना एवं कवि अनुभूति अथवा मानव के उस समवेत रूप का प्रकाशन है जिसमें कवि की ये दोनो वृत्तियाँ परस्पर संश्लिष्ट एवं अविच्छिन्न हो जाती है। कवि-कल्पना तथा कवि भावना की इस संश्लिष्ट प्रकृति का काव्यगत पर्यवसान बिम्ब-सृष्टि में ही होता है।[2] ब्रजनन्दन प्रसाद ने बिम्ब के निर्माण में कवि भावना एवं कवि-कल्पना—दोनो को समान श्रेय प्रदान किया है। उन्होंने बिम्ब को कवि की भावना एवं कल्पना के सामंजस्य द्वारा निर्मित एक अखण्ड एवं अविभाज्य प्रतिभा के रूप मे स्वीकार किया है।

बिम्ब के स्वरूप के सम्बन्ध में समीक्षकों की मान्यताओं पर दृष्टिपात करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि बिम्ब मानव-मन की पूर्वानुभूतियो, भावनाओ के आधार पर कल्पना शक्ति द्वारा निर्मित नवीन रूप-योजना है जिसमें ऐन्द्रियता की प्रधानता होती है। आवेग, संवेदना, अनुभूति, कल्पना, भावना एवं सौन्दर्य-बोध आदि इसके मूलभूत प्राण-तत्व हैं। इनके अभाव म कवि उच्च स्तर के काव्य-निर्माण में असफल हो जाता है। यह बिम्ब भाषा की अनन्त शक्तियो द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उन शक्तियो में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार बिम्ब-प्रतिपादन के विशेष माध्यम हैं।

बिम्ब के गुण —बिम्ब काव्य का सार्वभौमिक गुण है। भाव संकुल प्रतिभा होने के कारण बिम्ब में विश्व की किसी अनुभूति, भावना, विचार-

1. "An image may be, for example, a visual image, a copy of sensation or it may be an idea, any event in mind, which represents something, or it may be a figure of speech, a double unit involving comparison."
S. T. Coleridge. Qt. by I. A. Richards, Coleridge on Imagination.

२ काव्यात्मक बिम्ब : अक्षौरी ब्रजनन्दन प्रसाद। प्रथम संस्करण–पृ० ४५

सरणि या सुषमा को अन्यों तक पहुँचाने की शक्ति है। सफल बिम्ब-विधान पर ही काव्य का महत्व अक्षुण्ण रह सकता है। बिम्ब के सामान्य धर्मों या गुणों को किसी भी सीमित परिधि में आबद्ध नहीं किया जा सकता। काव्य के प्रत्येक बिम्ब में बिम्ब-विधान के सभी गुणों का एक साथ दर्शन नहीं होता। गुणों के आधार पर बिम्बों का दृढ़ विभाजन भी नहीं किया जा सकता। वास्तव में बिम्ब काव्य का अत्यन्त स्वाभाविक तथा स्वतः उत्पन्न तत्व है जिसका विश्लेषण उसके संदर्भ से हटाकर नहीं किया जा सकता। यदि इस प्रकार विश्लेषण किया जाय तो बिम्ब के वास्तविक सौन्दर्य की क्षति अवश्य हो जाती है।[1] भावना, अनुभूति और कल्पना के सामंजस्य के द्वारा उत्पन्न होने के कारण बिम्ब एक अखण्ड सत्ता है जिसके गुणों का सामूहिक आकलन किया जा सकता है, न कि उनका विवेचनात्मक विश्लेषण। फिर भी बौद्धिक-सान्त्वना के लिए बिम्बों के कुछ गुणों का अनुशीलन करना लाभदायक होगा। वास्तव में बिम्ब अपने संश्लिष्ट रूप में होता है। इसी कारण एक ही बिम्ब में अनेक गुणों का एक साथ होना अत्यन्त स्वाभाविक है। उस समय हम उस बिम्ब को उसके प्रधान गुण के आधार पर याद रखते हैं।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पोयटिक इमेज' में बिम्बों के गुणों का विवेचन करते हुए सिसिल डे लेविस ने बिम्ब के निम्नांकित गुणों का उल्लेख किया—

१. भावोत्तेजक शक्ति (एवोकेटिवनेस), २. भाव को तीव्रता के साथ व्यक्त करने का सामर्थ्य (इनटेनसिटी), ३. अभिव्यंजना की नवीनता एवं ताजगी (नावेल्टी एण्ड फ्रेशनेस), ४. परिचितता (फेमिलियारिटी), ५. उर्वरता (फेर्टिलिटी), ६. औचित्य (कांग्रटटी)।

१. भावोत्तेजक शक्ति :—मानव की सुप्त भावना को उत्तेजित करने की शक्ति बिम्ब में है। वह मानव की ऐन्द्रिय तथा वासनात्मक अनुभूतियों को तीव्र कर देता है। इस प्रकार बिम्ब अपने समग्र स्वरूप के द्वारा भावनाओं को उत्तेजित करता है। बिम्ब में नवीनता और ताजगी के संयोग से मानवमात्र की अनुभूतियों को एक झटके के साथ झंकृत करने की शक्ति है। निम्नांकित उद्धरण में

1. "The imagery of a poem is part of a living growth... ... even decorative and convential images can hardly be detached for examination, without losing some of their sparkle."—Poetic image : Lewis. P. 40.

बिम्ब के भावोत्तेजक गुण का दर्शन किया जा सकता है। पंतजी बुड्ढे का एक भाव-चित्र यों अंकित करते हैं :—

"उभरी ढीली नसें जाल-सी सूखी ठठरी से हैं लिपटी,
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों सूनी अमरबेल हो चिपटी !"[1]

इस बिम्ब में कवि ने उपमान के द्वारा पाठक के मन को उत्तेजित किया है। इस बिम्ब के द्वारा बूढ़े के शरीर का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। बूढ़े के कंकाल-तुल्य सूखे हुए शरीर से जाल की भाँति उभरी हुई ढीली नसें लिपटी हुई हैं। बूढ़े के शरीर पर लिपटी हुई नसों की जाली उसी प्रकार दृष्टिगोचर होती है जिस प्रकार पतझड़ में सूखकर ठूँठ बने हुए तरु से लगी हुई निष्प्राण अमरबेल दिखाई देती है। इस बिम्ब में औचित्य गुण के साथ भावोत्तेजकता का गुण भी पूर्णरूप से वर्तमान है। इस बिम्ब में प्रभविष्णुता की पराकाष्ठा है। क्योंकि वृद्धावस्था में व्यक्ति सूखकर उसी प्रकार ठठरी बन जाता है जिस प्रकार शिशिर ऋतु में वृक्ष पत्र-पुष्प रहित होकर तथा सूखकर ठूँठ बन जाता है। बूढ़े के शरीर में यौवन और शक्ति के ह्रास होने के कारण नसें ढीली पड़ जाती हैं और वचा से सटकर उभराती है। बाहर से देखने पर ये नसें एक जाल के आकार ें दिखाई देती है। इन नसों में उष्ण रक्त का प्रवाह न होने पर भी बूढ़े के स्थिपंजर से लिपटी रहती है। इसी चित्र को हृदयगम कराने के लिए पंतजी प्रकृति से समान गुण-धर्म समन्वित बिम्ब को प्रस्तुत किया है। बूढ़ा अपने ाप्य के पतझर में सूखते हुए वृक्ष की भाँति निष्प्राण एवं निस्सार बन जाता ेर उसके शरीर पर जाल की भाँति दिखाई देनेवाली नसें उसके शरीर में प्रकार लिपटी हुई है जिस प्रकार निष्प्राण अमरबेल शिशिर के सूखे तरु में। शिशिर के सूखे तरु और बूढ़े के कंकाल-तुल्य शरीर में सादृश्य है। गुण, ाप और स्थान की दृष्टि से ढीली उभरी नसों की जाली में सूखी हुई अमरबेल की समानता दिखाई देती है। जिस प्रकार अमरबेल अपने अस्तित्व के लिए पेड़ से जीवन-रस को ग्रहण करती है उसी प्रकार नसें मानव-शरीर से प्राण-रस ग्रहण करती है। किसी भी दशा में न अमरबेल वृक्ष का छोड़ सकती है, न नसें व्यक्ति के शरीर को, चाहे वृक्ष पतझड़ में ठूँठ बन जाय या व्यक्ति बुढ़ापे के कारण ठठरी हो जाय। बूढ़े के शरीर पर उभरी, बिखरी हुई नसों की भाँति सूखे तरु से लिपटी हुई अमरबेल की तुलना [illegible] दिखाई देती है। इस प्रकार इस बिम्ब में भावों को उत्तेजित करने का अद्भुत सामर्थ्य है।

---

१. 'रश्मिबंध'—सुमित्रानन्दन पंत। पृ० ७३।

भाव को तीव्रता के साथ व्यक्त करने का सामर्थ्य :—बिम्ब में भाव को तीव्र करने का गुण है। यदि भाव को तीव्र करने की शक्ति बिम्ब में नहीं है तो वह बिम्ब असफल माना जायगा। बिम्ब भावों को तीव्रतररूप में प्रस्तुत करने के लिए शक्तिमय भाषा को अपनाता है। जितने कम शब्दों में बिम्ब का प्रतिपादन होता है। उतना ही अधिक उस बिम्ब में भावों को तीव्र करने की शक्ति होती है। अत भाव को तीव्र करने के लिए बिम्ब का निर्माण साभिप्राय शब्दों से होना चाहिए। उसी समय काव्य मे अधिक से अधिक भाव कम शब्दो में प्रकट होता है। बिम्ब में भाव को तीव्र करने के गुण के लिए प्रसादजी की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :—

"इस करुणा कलित हृदय में, अब विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती॥"[१]

प्रसादजी इस बिम्ब के द्वारा यह प्रस्तुत करते है, उनके करुणा भरे हृदय में उस समय अत्यन्त व्याकुल रागिनि बज रही है। कवि अपनी आंतरिक पीड़ा को व्यक्त करते हुए स्वयं अपने से पूछते हैं कि क्यो उनके हृदय की असीम वेदना हाहाकार के स्वरो में गर्जन करती है। इस बिम्ब में वेदना की तीव्रता भलीभाँति व्यक्त हुई है। कवि इस बिम्ब के निर्माण में अत्यन्त सजग रहते हैं। कवि अपनी हृदय की वेदना को मूर्तिमान करने के लिए दो महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग करते है। प्रथम शब्द 'हाहाकार' है। इस शब्द के द्वारा हमारे मानस-पटल पर दीन-दुखियो का चीत्कार या करुण क्रन्दन का चित्र अङ्कित होता है। इस शब्द के प्रयोग के द्वारा कवि वेदना की अनुभूति में तीव्रता को लाते है। परन्तु कवि इस शब्द के प्रयोग से सन्तुष्ट नहीं होता है। वह अनन्त वेदना की तीव्रता को पराकाष्ठा तक पहुँचाने के लिए 'गरजती' शब्द का प्रयोग करते है। 'गरजना' शब्द बादलों के अट्टहास के लिए प्रयुक्त होता है। यहाँ 'गरजना' भावगत तीव्रता का सूचक है तथा भयानक वातावरण के निर्माण में समर्थ है। जिस प्रकार घनो का गम्भीर और भयोत्पादक गर्जन असह्य हो जाता है उसी प्रकार कवि की वेदना भी असह्य हो जाती है। इस प्रकार भाव को तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करने का गुण बिम्ब में वर्तमान है।

अभिव्यञ्जना की नवीनता एवं ताजगी :—श्रेष्ठ बिम्ब का गुण यह होता है कि उसमें नवीनता एवं ताजगी वर्तमान रहती है। कवि परम्परा में

१. 'आँसू'—जयशंकर प्रसाद पृ० ७

प्रयुक्त प्राचीन बिम्ब अधिक प्रयोग के कारण रूढ़ बन जाते है और उनमें भाव प्रेषणीयता की शक्ति घट जाती है। मौलिकता एवं नवीनता श्रेष्ठ बिम्ब के आवश्यक गुण हैं। मौलिकता और नवीनता के कारण बिम्ब में भावोत्तेजना की शक्ति का संचार होता है। उदाहरण के लिए पंतजी के 'परिवर्तन' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है।

"आज पावस नद के उद्गार
काल के बनते चिन्ह कराल,
प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल !"[१]

उपर्युक्त पंक्तियों में पंतजी नवीन एवं प्रभावशाली बिम्ब प्रस्तुत करते हैं। पंतजी का कथन है कि वर्षा ऋतु में उमड़कर बहनेवाली नदियों की उमगें कालान्तर में काल के भयद चिन्ह बन जाती है। प्रात काल सूर्य के स्वर्ण किरणों के प्रकाश में डूब कर जगत् सोने के बने हुए संसार की भाँति दिखाई देता है। उसी स्वर्णिम संसार को संध्याकाल की प्रकाश की ज्वालाएँ जला देती हैं। इन बिम्बों के द्वारा कवि परिवर्तन की क्रिया को हृदयंगम कराने की सफल चेष्टा करते हैं। बिम्ब की नवीनता और ताजगी के कारण उनमें भावप्रेषणीयता के साथ नवीन सौंदर्य बोध का भी समावेश हुआ है।

परिचितता—एक श्रेष्ठ बिम्ब के लिए नवीनता के साथ पाठकों को पहले ही उसके सम्बन्ध में किंचित परिचय का होना परम आवश्यक है। कवि द्वारा प्रस्तुत बिम्ब का आकलन पाठक उसी समय कर सकता है जबकि उसके जीवन के बीच में उसका धूमिल परिचय पहले ही प्राप्त कर चुका हो। इसी लिए कवि को जन-समाज में स्वीकृत उपकरणों के द्वारा ही बिम्ब का निर्माण करना चाहिए। तभी ही कवि के बिम्ब सहृदय-संवेद्य बन सकते हैं। बिम्ब के इसी गुण को परिचितता कहा जा सकता है। इसी गुण के कारण बिम्ब का सामाजिक महत्व अक्षुण्ण रह जाता है। अति वैयक्तिक बिम्बों की प्रेषणीयता में इसलिए बाधा उपस्थित हो जाती है कि उसमें सामाजिक परिचितता का पूर्ण या आंशिक अभाव रहता है। यह परिचितता वैयक्तिक जातीय हो सकती है। इसका विशद विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया जायगा।

१. 'रश्मिबंध'—सुमित्रानन्दन 'पंत'—पृष्ठ ५०

उर्वरता—भावों को उर्वरता प्रदान करना भी बिम्ब का एक आवश्यक गुण है। केवल भावों को व्यक्त करने में ही बिम्ब का कार्य समाप्त नहीं होता अपितु पाठक के मन को उन्हीं भावों की अनुभूति में अधिक समय तक डुबा देने की क्षमता भी उसमें वर्तमान है। बिम्ब के इसी गुण को उर्वरता कहते हैं। उर्वरता के गुण को प्राप्त करने के लिए बिम्ब का सांकेतिक एवं व्यंजक होने की आवश्यकता है। जहाँ बिम्ब का प्रतिपादन सुगठित एवं समर्थ शब्दावली द्वारा होता है वहाँ बिम्ब उर्वरता के गुणों से सम्पन्न हो जाता है। उसमें पाठक को भाव-विभोर करने की क्षमता होती है। इस प्रकार की शक्ति का दर्शन पंतजी की निम्नांकित पंक्तियों से होता है :—

> 'विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
> छान रहे तुम, कुटिल काल कृमि- से धुस पल-पल'।[1]

पंतजी परिवर्तन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम अनन्त इच्छाओं रूपी पंखुड़ियों से निर्मित एवं विकसित विश्व के शतदल में कुटिल काल (मृत्यु) कीट की भाँति घुसकर हर क्षण इच्छा रूपी पंखुड़ियों को काट देते हो। इसमें विराट बिम्ब का निर्माण हुआ है। इसमें बहुत से शब्दों का प्रयोग साभिप्राय एवं संगठित रूप में हुआ है। विराट विश्व में असंख्य मनुष्यों का निवास होता है। उन मनुष्यों के मानसों में अनेक इच्छाओं का होना अनिवार्य है। यहाँ कवि 'वासना' शब्द से मानव की निम्नस्तर की इच्छाओं की ओर संकेत करते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति के मन में इच्छाएँ अनेक होती हैं। उसी प्रकार शतदल में अनेक पंखुड़ियाँ होती हैं। इसी कारण कवि कमल के अनेक पर्यायों में केवल शतदल शब्द का ही प्रयोग करते हैं। इस बिम्ब में इच्छाओं रूपी पंखुड़ियों से बना हुआ मानस-शतदल द्रष्टव्य है। 'विपुल वासना' 'मानस' 'शतदल' आदि शब्दों के द्वारा कवि के एक विशेष दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। वह यह है कि जिस प्रकार शतदल अनेक पंखुड़ियों का आवास है उसी प्रकार अनेक इच्छाओं से मानस (मन) भरा रहता है। 'मानस', 'शतदल' शब्दों का साथ-साथ प्रयोग करके कवि मानसरोवर में विकसित शतदलों की ओर हमारे मानसिक चक्षु को आकृष्ट करते हैं। ऐसे विराट, विपुल वासना-विकसित विश्व के मानस शतदल में कुटिल काल कीट की भाँति प्रतिक्षण घुसकर परिवर्तन उसे नष्ट कर देता है। कीट का कमल में घुसकर उसे नष्ट करने के सामान्य कार्य को कवि ने

---

१. 'रश्मिबंध'—सुमित्रानन्दन 'पंत'—पृष्ठ ५३

बिम्ब और परिवर्तन के सन्दर्भ में बदलकर अनन्त उत्तेजक, भावोत्तेजक, वर्वर, संश्लिष्ट एवं असंश्लिष्ट बिम्ब को प्रस्तुत करते हैं।

औचित्य —औचित्य ऐसा तत्त्व है जो जीवन और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में इसके औचित्य को प्रकट करता है। सभी गुणों से युक्त होते हुए भी यदि बिम्ब में औचित्य का अभाव है तो उसे सफल बिम्ब नहीं कहा जा सकता। औचित्य के अभाव में प्रभावोत्पादकता की शक्ति का ह्रास हो जाता है। बिम्ब के सभी अन्य गुण इसी मुख्य गुण के आधार पर ही चरितार्थ होते हैं। भाव या काव्य के विशेष प्रसंग को ध्यान में रखकर ही बिम्ब का चयन होना चाहिए। तभी तो उसका औचित्य बना रहेगा। उदाहरणार्थ निराला जी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"स्नेह-निर्झर बह गया है,
रेत-ज्यों तन रह गया है।

आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है, "अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति वह मैं हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ, "जीवन दह गया है।"[1]

निरालाजी की इस पद्यांश में स्पष्टतः तीन बिम्ब हैं। ये तीनों बिम्ब एक ही भाव-सूत्र में पिरोये जाने के कारण उनमें प्रभाव साम्य है। बिम्ब के अन्य विभिन्न तत्वों को औचित्य का गुण अपने में समाहार कर लेता है। इसी औचित्य के कारण उपर्युक्त पंक्तियों में प्रभविष्णुता की अपरिमेय शक्ति आ जाती है। अतः औचित्य एक श्रेष्ठ बिम्ब का सार्वभौमिक गुण है।

---

१. 'अपरा'—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—पृष्ठ १३५

रूपक और काव्य-बिम्ब

रूपक के द्वारा काव्य-बिम्ब का विशुद्ध एवं सौन्दर्य-मण्डित रूप उभर आता है। काव्यात्मक बिम्ब के सभी श्रेष्ठ पद रूपक के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। रूपक और बिम्ब के सम्बन्ध का निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जाय :—

१. रूपक का स्वरूप, २. उपमा और रूपक, ३. रूपक : काव्यात्मक बिम्ब के विशुद्ध रूप का माध्यम, ४. रूपक : भाषा की समाहार शक्ति, ५ रूपक : काल्पनिक सौन्दर्य-सृष्टि का माध्यम, ६. रूपक : कवि वैभव का सूचक, ७. रूपक के भेद : रूपक, सांगरूपक और मानवीकरण।

रूपक का स्वरूप—भारतीय आचार्यों ने रूपक के स्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया है। आचार्य भामह के अनुसार उपमेय की उपमान से एकरूपता तथा गुणों की समता को रूपक व्यक्त करता है। हिन्दी साहित्य-कोष में रूपक की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—"सादृश्यगर्भ अभेदप्रधान आरोप-मूल अर्थालंकार जिसमें अति साम्य के कारण प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करके अभेद दिखाया जाता है। इस शब्द का अर्थ है एकता अथवा अभेद की प्रतीति।"[१] श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने लिखा है—"पूर्णोपमा अलंकार में वाचक और धर्म को मिटाकर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करने से वह रूपक हो जाता है।"[२] कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी रूपक के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार किया है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द पोयटिक माइण्ड' में एफ० सी० प्रेसकाट ने बहुत सुन्दर ढंग से रूपक के स्वरूप की विवेचना की है। उनके अनुसार कल्पना अपने शुद्ध रूप में रूपक में प्रकट होती है। कवि-कल्पना दो वस्तुओं को मानस पटल पर लाती है। उनकी तुलना नहीं करती। वस्तुओं के बीच की तुलना का विश्लेषण करना कल्पना का कार्य नहीं। कल्पना दो वस्तुओं के साम्य का न दर्शन करती है न अनुभव करती है, अपितु वह इन वस्तुओं को एक साथ फेंककर उनका सम्मिश्रण प्रस्तुत करती है। इस समय वह इस प्रकार के सम्मिश्रण से एक नवीन वस्तु या बिम्ब को जन्म देती

---

१. हिन्दी साहित्य कोष— संपादक : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ६६७

२. काव्यात्मक बिम्ब में उद्धृत—अखौरी ब्रजनन्दन

उपमा और रूपक—उपमा और रूपक साम्यमूलक अलंकारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत इन दोनों की सृष्टि-प्रक्रिया एवं प्रभाव में पर्याप्त साम्य है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इन दोनों का अन्तर स्पष्ट किया है। दण्डी के अनुसार द्रव्य, गुण, क्रिया—किसी भी प्रकार से उत्पन्न सादृश्य का नाम उपमा है। जब उपमान उपमेय का पारस्परिक भेद तिरोहित हो जाता है तो उस सादृश्य को रूपक कह देते हैं।[१] आचार्य वामन ने रूपक के लक्षण बताते हुए लिखा कि उपमान के साथ उपमेय के गुण का साम्य होने से उपमेय में उपमान के अभेद का आरोप ही रूपक है।[२] आचार्य रुद्रट के मतानुसार उपमान में सिद्ध गुण का उपमेय में साध्य बनाना तो उपमालंकार है[3] और गुणों के साम्य से उपमा और उपमेय के अविवक्षित सामान्य भेद को रूपक कहते हैं।[४] मम्मट उपमान और उपमेय के अभेद को रूपक बताया है।[५] भारतीय आचार्यों का मत यह है कि उपमान एवं उपमेय के एकरूप होने से रूपक का जन्म होता है। भारतीय आचार्यों ने इन अलंकारों का विवेचन पाठक या आलोचक के दृष्टिकोण से किया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने उपमा और रूपक के भेद का स्पष्टीकरण किया है। कुछ विद्वानों के मत इस संदर्भ में विशेष द्रष्टव्य हैं। नोरमन कोलान के अनुसार बिम्बों के प्रतिपादन करनेवाले सहज माध्यम उपमा और रूपक हैं। इन दोनों में भावात्मक एवं तात्विक अन्तर है। रूपक में विचार का बिम्ब से तादात्म्य स्थापित हो जाता है तो उपमा में वह तुलना द्वारा आत्मबोध का अनुभव करता है।[६] मिडिलतन मरे के अनुसार रूपक एक गठित या घनीकृत

---

१. काव्यादर्श : दण्डी। २ : १४ तथा ६६.

२. "उपमानोपमेयस्य गुण साम्यात् तत्वारोपो रूपकम्"—काव्यालंकार—सूत्रवृत्ति : वामन, ४ : ३ : ६

३. काव्यालंकार : रुद्रट ८ : ४.

४. वही—८ : ३८.

५. काव्य प्रकाश : मम्मट १० : ९३

6. "The two most natural figures to introduce images are metaphor and simile. Between these two there is an emotional difference as well as the technical one......in metaphor the thought is identified with the image, but in simile it feels a certain self-consciousness in the comparison." Poetry in Practics—by Norman Callan. P. 123.

तुलनात्मक दोष और।

उपमा है।[1] इन्द्र की.
किया है—"उपमा, गद्य।
भाँति संश्लिष्ट होती है, उ
पूर्ण होता है, उपमा तार्कि
विश्लेषण-निरपेक्ष, उपमा त
ग्रहण करता है ... ... ह और रूपक प्रातिभज्ञान के द्वारा ... क अतार्किक तथा
में है।"[2] इस विवेचन में विद्वान आलोचक ने उपमा और रूपक में वही भेद है जो गद्य एवं कविता को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। एफ. सी. प्रेसकाट ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द पोइटिक माइन्ड' में रूपक एवं उपमा के भेद का स्पष्टीकरण किया है। उनका कथन है कि उपमा एवं रूपक—दोनों साम्यमूलक अलंकार हैं, परन्तु उन दोनों में तात्विक अन्तर है। रूपक उपमा की भाँति दो वस्तुओं की तुलना न करके वह कवि के मानस में घटित उन वस्तुओं के काल्पनिक संयोग को प्रस्तुत करता है। अत: रूपक विशुद्ध रूप से कल्पना की भाषा है।[3] दूसरी ओर उपमा दो वस्तुओं या क्रिया व्यापारों की तुलना किसी सम्बन्ध सूचक शब्द द्वारा करती है और वह गद्य की भाषा है। वह दो वस्तुओं को एक के बाद एक रखकर सतर्कता के साथ उनकी तुलना करती है, वह कल्पना में उनका संयोग नहीं कराती है। वह वस्तुओं के बीच के सम्बन्ध को मानने के बजाय

---

1. 'Metaphor is a compressed simile"—Middleton Murry—Shakespeare's criticism. (1919—35) P. 228.

2 "Simile, like prose, is analytic, metaphor, like poetry, is synthetic; simile is extensive, metaphor intensive; simile is logical and judicious, metaphor illogical and dogmatic; simile reasons, metaphor apprehends by intution......simile is to metaphor as prose is to poetry."—W B Stanford: Greek Metaphor—PP. 28—29.

3. "..... because instead of comparing two objects, it (metaphor) names an imaginative fusion which has already taken place in the poet's mind. It is therefore strictly the language of the imagination"—The Poetic Mind: F. C. Prescott.—P. 227.

उसके अस्तित्व को पहचानती है। कम से कम यह उपमा की प्रवृत्ति है।[1] कभी-कभी उपमा में भी काव्यात्मकता आ जाती है जब उपमा किसी काल्पनिक संयोग को जन्म देती है। काल्पनिक संयोग के अभाव में कभी-कभी रूपक भी गद्यात्मक हो सकती है।[2] प्रेसकाट का उपर्युक्त विवेचन अत्यन्त युक्तिसंगत है। क्योंकि कालिदास जैसे महाकवियों ने उपमा को कल्पना के बल पर अत्यन्त काव्यात्मक बना दिया है तो तुलसीदास ने मानस के बालकाण्ड में अपने सागरूपकों को एक प्रभावरहित तुलना के रूप में प्रस्तुत किया है। अत. प्रेसकाट के अनुसार हमें यही देखना है कि उपमा या रूपक में दृश्य कल्पना का संयोग या मिश्रण हो रहा है या सीधे विचारों की तुलना हो रही है। सामान्य रूप से इतना तो कहा जा सकता है कि काल्पनिक सम्मिश्रण या संयोग स्वाभाविक रूप से रूपक के रूप में, और तुलना उपमा के रूप में व्यक्त होते हैं।[3] उन्होंने मिडिलटन मरी, सर्जियन एवं कुछ अन्य विद्वानों के इस विचार का खंडन किया कि रूपक उपमा का ही गठित (कम्प्रेसड्) स्वरूप है। प्रेसकाट के अनुसार यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है। उनके कथनानुसार अन्य विद्वान समझते हैं कि कवि पहले दो वस्तुओं के तर्कसंगत विवेचन करने के पश्चात् उनको संगठित करके रूपक का निर्माण करता है। परन्तु यह सर्वथा भ्रामक है। इससे कहीं यह कहना उचित होगा कि उपमा रूपक का विश्लेषणात्मक रूप है। काव्य के इतिहास में

1. "The simile on the other hand, which connects the names of two objects with the word like or its equivalent, is the language of prose. It puts two things side by side and deliverately compares them with the understanding; it does not fuse them in the imagination. It notices the bond instead of merely obeying it. This at least is the mood of the simile."—Ibid P. 228.

2. "The metaphor will sometimes be prosaic, the simile often poetical"—Ibid. P. 228.

3. "The real question is whether the expression results from a fusion of the visionary imagination, or is a mere comparison of the directed thought, and it can be said only that fusion expresses itself most naturally in metaphor, the comparison in simile."—Ibid. P. 228.

उपमा की अपेक्षा रूपक अधिक प्राचीन एवं काव्यात्मक रूप है।[1] प्रेसकाट की इस धारणा का समर्थन भारतीय आचार्यों में प्रसिद्ध भामह के मत से हो जाता है। भामह ने रूपक का निरूपण उपमा से पूर्व ही स्थापित किया है। प्रेसकाट कहते हैं कि आदिम मानव किसी अरण्य को जलते देखकर यह कहते हैं, 'आग अरण्य को खा रही है।' इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह पहले व्यक्ति के खाने की क्रिया और अग्नि को जलाने की क्रिया को अलग-अलग देखकर उन दोनों का समाहार कर रहा हो। वह केवल दोनों क्रियाओं के साम्य को पहचानता है, दोनों का एकीकरण करता है और एक की क्रिया को अपने परिचित क्रिया-शब्द द्वारा प्रकट करता है। उन दोनों के क्रिया-व्यापारों के तुलनात्मक विश्लेषण का कार्य बहुत बाद की उपज है। जो आलोचक रूपक को एक संगठित रूपक मानते हैं, वे कवि मस्तिष्क के कार्य पर सामान्य गद्यात्मक चिन्तन का आरोप करते हैं। यह सर्वथा भ्रामक है।[2] प्रेसकाट का यह विवेचन अत्यन्त सारगर्भित तथा उपमा तथा रूपक के स्वभाव से अवगत होने में सहायक सिद्ध होना है।

रूपक : काव्यात्मक बिम्ब के विशुद्ध रूप का माध्यम—रूपक ही भाषा का ऐसा माध्यम है, टेकनीक है, जिसके द्वारा विशुद्ध काव्यात्मक बिम्बों का निर्माण होता है। बिम्ब अपने सहज एवं प्रभावोत्पादक ढंग से रूपक में व्यक्त होते हैं, बिम्ब की समग्रता एवं नवीनता को अक्षुण्ण रखने के लिए रूपक की

---

1. "It is sometimes stated in school books that the metaphor is a 'condensed simile'. If this means that the poet first makes a conscious comparison and then compresses this into a metaphor, it is of course not at all true. It might rather be said that the simile is an analyzed and expanded metaphor. The metaphor is the older and more fundamental figure."—The Poetic Mind F. C. Prescott. pp. 228—229.

2. "This mistake, however, would be only a little worse than many made—not by the readers of poetry, who have no difficulty—but by the critics and rhetoricians who attribute to the poet the habits of ordinary prosaic thought and do not understand the working of the poet's mind."

—Ibid. P. 229.

सहायता परमावश्यक है। अतः रूपक को काव्यात्मक बिम्बों की विशुद्ध आत्मा का शरीर कहा जाता है।

रूपक : भाषा की समाहार शक्ति—रूपक के द्वारा कवि कम शब्दों में अधिक भाव को या पूर्ण बिम्ब को प्रस्तुत कर सकता है। भाषा की समाहार-शक्ति रूपक में पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। अंग्रेजी के समालोचक मिड्लिटन मरी कहते हैं—'संक्षेप में लिखने की चेष्टा करोगे तो अवश्य तुम्हारी भाषा रूपकात्मक हो जायगी।'[1] नोरमन कालान का कथन है कि 'बिम्बों को संगठित रूप में व्यक्त करने के लिए रूपक उपमा का स्थान ले लेता है।[2] कल्पना की समाहार शक्ति के साथ-साथ भाषा में भी समाहार शक्ति आती है तो कल्पना भाषा के साँचे में अपने समग्र एवं अकुंठित रूप से ढल जाती है। अतः बिम्ब को प्रेषणीय बनाने के लिए भाषा अपनी विराट रूपक शक्ति का प्रयोग करती है। कवि वर्णन के द्वारा भी एक स्वर के प्रत्यक्ष बिम्बों को प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु प्रबुद्ध पाठक के कल्पनाशील मन की क्षुधा ऐसे वर्णनों से नहीं मिटती। इसी कारण जो कवि एक ही शब्द अथवा वाक्यांश के द्वारा कल्पना को उद्बुद्ध करनेवाली अमर बिम्बों का निर्माण करता है।[3] उदाहरण के लिए कविवर पंत की 'बादल' कविता के कुछ बिम्बो को देखें जो अत्यन्त कम शब्दों में रूपक की भाषा में व्यक्त हुए हैं। बादल कहते हैं—

'हम सागर के धवल हास है,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि वसन, वसुधा के मूल;"[4]

---

1. "Try to be precise and you are bound to be metaphorical." —Middleton Murry—Qt. in Poetic Image: C. D. Lewis, P. 23.

2. "In time images become more economical and compressed, metaphor takes the place of simile." Poetry in Practice: Norman Callan, p. 127.

8. "...... our flying minds cannot contain a *protracted* description. That is why the poets, who spring imagina tion with a word or a phrase, *paint lasting pictures*."

Meridith. Qt. in Judgment in Literature: W. Basic Worsfold.

४. रश्मिबन्ध : सुमित्रानन्दन पन्त—पृ० ४५

कविवर पन्त ने बादलो के विभिन्न बिम्बो को अत्यन्त सशक्त रूपकों द्वारा प्रस्तुत किया है। अधिकांश बिम्ब दो, तीन शब्दों से बने हुए हैं। परन्तु बिम्ब इतने समग्र एवं स्पष्ट हैं कि कोई चित्रकार अपनी तूलिका से इन्हे चित्र के रूप अंकित कर सकता है। अन्तिम दो पंक्तियो में कवि की कल्पना अत्यन्त मोहक बन पड़ी है। उनमें बादल कहते है कि वे वायु रूपी प्रवाहित नदी की धारा मे धवल फेन है, उषा रूपी आकाश तक फैले हुए विराट वृक्ष के लाल-लाल पल्लव है, जल रूपी नायिका के शरीर पर लहराते हुए वस्त्र है और वसुधा रूपी वृक्ष की जड़ें है। इस प्रकार रूपक में अत्यन्त संक्षेप में विराट् एवं भव्य बिम्बो को प्रस्तुत करने की अपार क्षमता है।

रूपक : काल्पनिक सौन्दर्य-सृष्टि का माध्यम :—यह पहले भी कहा जा चुका है कि रूपक कल्पना की भाषा है और कल्पना सौन्दर्य की सृष्टि बिम्ब के माध्यम से करती है। कवि संसार के सौन्दर्य को अपूर्ण मानता है। वह विश्व और जीवन की कुरूपता को अपनी कला के स्पर्श से सुन्दर बना देता है। वह अपूर्ण विश्व-सौन्दर्य को अपनी कल्पना-शक्ति एवं आत्मा के प्रकाश के आलोक में परिवर्तित कर उसे अपार्थिव एवं दिव्य स्वरूप दे डालता है। कवि रूपकों के माध्यम से विभिन्न वर्णों, रूपों एवं आन्तरिक गुणों से युक्त सुन्दर बिम्बो को प्रस्तुत कर सकता है। प्रसादजी के सम्पूर्ण 'कामायनी' महाकाव्य में कवि का कल्पनाप्रसूत सौन्दर्य बिखर पड़ा है। कवि श्रद्धा के रूप-वर्णन को अत्यन्त सुन्दर बना दिया है। श्रद्धा के सौन्दर्य का अंकन देखिए :—

'घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास;
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
और वह मुख पर वह मुसकान,
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।'[1]

श्रद्धा का यह सौन्दर्य कवि-कल्पना प्रसूत है। कवि की यह सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति का बिम्ब मानस-पटल पर अंकित हो जाता है। अतः रूपक काल्पनिक-

1. कामायनी—जयशंकर प्रसाद—पृ० ४७

सौन्दर्य की अभिव्यंजना का सफल एवं सशक्त माध्यम है। कवि का स्रष्टा रूप यहीं मुखर होता है।

रूपक : कवि वैभव का सूचक :—कवियों की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं। परन्तु कवि की महानता एवं उसकी प्रतिभा को देखना है तो उसकी बिम्ब-योजना में देख सकते हैं और बिम्ब की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम रूपक है। कवि की महानता उसकी रूपक-योजना पर ही अधिक आधारित रहती है। सिसिल डे लेविस के अनुसार *काव्य का प्राण-तत्व एवं कवि का ऐश्वर्य रूपक-विधान में ही निहित रहता है।*[१] जिस कवि में भाषा की समाहार शक्ति होगी, वही कवि कल्पित बिम्बों के निर्माण में सफल हो जाता है। भाषा की समाहार शक्ति रूपक में अत्यधिक रूप में है।

रूपक के भेद : रूपक, सांगरूपक और मानवीकरण :—भारतीय आचार्यों ने रूपक के २० भेद माने है। परन्तु बिम्ब की दृष्टि से हम यहाँ उसके तीन विशिष्ट रूपों का ही अध्ययन करेंगे। ये तीन-तीन रूप इस प्रकार हैं—

१. रूपक २. सांगरूपक और ३. मानवीकरण

१. रूपक—यह रूपक अलंकार का संक्षिप्त रूप है। यहाँ दो वस्तुओं में भेद लुप्त हो जाता है और दोनों एक दूसरे के आलोक में विकीर्ण होकर रूपक जन्य बिम्ब को प्रस्तुत करते हैं। इसका प्रयोग अत्यन्त प्रचुरता के साथ होता है। उदाहरणार्थ—

> "मृदुल होंठों का हिमजल हास
> उड़ा जाता निःश्वास समीर
> सरल भौहों का शरदाकाश
> घेर लेते घन घिर गम्भीर।"[२]

इसमें निःश्वास रूपी समीर तथा सरल भौहों का शरदाकाश रूपक के द्वारा प्रस्तुत बिम्ब है। रूपक की सत्ता कभी-कभी बहुत सूक्ष्म होती है जैसे 'बिजली का फूल'। इस रूपक में सुन्दर बिम्ब खड़ा हो जाता है।

---

१. "...... Metaphor remains, the life-principle of poetry, the poet's chief test and glory."—*Poetic Image : C D. Lewis. P. 17.*

२. रश्मिबन्ध : सुमित्रानन्दन पंत—पृ० ५१

२. [illegible] — इसको सावयव रूपक भी कहते हैं। [illegible] के अनुसार [illegible] में [illegible] रूपकों का [illegible] सावयव रूपक या सांगरूपक है।[1] [illegible] रूपक, जब किसी एक सूत्र में ऐसे आबद्ध हों जिनसे एक संश्लिष्ट बिम्ब का [illegible] हो सकता है तो वे सांगरूपक में समाहित हो जायेंगे। उदाहरणार्थ [illegible] जी की 'परिवर्तन' कविता में एक सांगरूपक को ले लें—

"अहे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष स्थल पर।
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर, वक्र कुंडल दिङ्मडल।"[2]

इस सांगरूपक में कवि ने परिवर्तन एवं वासुकि सर्प का रूपक बाँध दिया है। सांगरूपक में आदि से अन्त तक रूपक सटीक बैठ जाती है। यह इतना स्पष्ट है कि उसके विश्लेषण की कोई आवश्यकता नहीं।

३ मानवीकरण — मानवीकरण एक विशिष्ट प्रकार का रूपक है। कवि अपने चारो ओर बिखरे हुए अनन्त प्रकृति में चेतना का दर्शन करता है। जड़ प्रकृति को भी वह जीवित मानकर उसमें मानवो के क्रिया-व्यापारो, गुणों एव रूपो को आरोपित करता है। रूपक एवं मानवीकरण में एक प्रमुख भेद है। वह यह है कि जहाँ रूपक वस्तुओ से वस्तुओ का एकीकरण प्रस्तुत करता है, वहाँ मानवीकरण वस्तुओ के ऊपर मानवो को रूप, गुण या व्यापार के आधार आरोपित किया जाता है।[3] यह अलंकार अत्यंत प्राचीन होते हुए भी, रूपक तत्व के निहित होने के कारण इसमें सौन्दर्य के साथ सजीवता आ जाती

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : स० धीरेन्द्रवर्मा—पृ० ६६९
२ रश्मिबंध . सुमित्रानन्दन पंत—पृ० ५३
3. "Personification is merely a variety of metaphor, though a very large and important one. Ordinary metaphor represents a fusion of objects with objects; personification a fusion of objects with persons."—The poetic Mind.
F. C. Prescott. P. 229.

है। कालिदास के मेघदूत से लेकर सुमित्रानन्दन पंत की 'छाया', 'बादल' आदि कविताओं तक मानवीकरण की योजना अनन्त रूप से चलती आयी है। उदाहरण के लिए पंतजी के एक मानवीकरण को ले लिया जाय—

"मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़—
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार,
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल !"[१]

उपर्युक्त बिम्ब का निर्माण मानवीकरण द्वारा हुआ है। मानवीकरण के बिम्ब में सजीवता आ जाती है। मेखलाकार के अपार पर्वत अपने सहस्रों फूल रूपी नयनों से अपने महाकार को, चरणों के पास ही फैले हुए सरोवर रूपी दर्पण में बार-बार देख रहा है। यहाँ जड़ पर्वत में मानवीय रूप एवं धर्म को आरोपित किया गया है।

———

दिनकर की कविता में राजनीतिक क्रान्ति का स्वरूप

आधुनिक मानव एक राजनीतिक प्राणी है। वह राजनीति के क्षेत्र में अपना सक्रिय योगदान देता है। वह अपने को राष्ट्र के निर्माता तथा उसका एक अभिन्न अंग मानता है। वह स्वयं राष्ट्र के शासकों को चुन लेता है और स्वयं उनमें शामिल भी होता है। इस प्रकार सभ्य समाज में मानव की राजनीतिक चेतना विकसित रहती है। वह राजनीति के द्वारा अपना तथा राष्ट्र का कल्याण चाहता है। कभी-कभी वह जब अपने राष्ट्र की राजनीतिक परिस्थितियों से असन्तुष्ट हो जाता है तो वह उन्हें बदलने की चेष्टा करता है। यदि शासक स्वयं बदलना नहीं चाहता हो या वह दमन, दण्ड आदि हिंसात्मक प्रवृत्तियों को अपनाना हो तो मनुष्य उससे अपनी रक्षा करने के लिए क्रान्ति का मार्ग अपनाता है। मानव और राष्ट्र तथा मानव और समाज के बीच में राजनीतिक सम्बन्ध अनेक प्रकार के हैं। उन सभी सम्बन्धों के विषय में दिनकर की विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए उनका विभाजन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है।

१. साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्ति, २. क्रूर शासकों के विरोध में क्रान्ति।

१. साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्ति—यदि कोई देश अन्य देशों को जीत लेता है और वहाँ की जनता पर अपना शासन चलाता है तो उस देश को साम्राज्यवादी देश तथा उस प्रक्रिया को साम्राज्यवाद कहा जाता है। शक्तिशाली देश की प्रजा दुर्बल देशों की जनता पर आक्रमण करके उसकी धन सम्पत्ति को लूट लेती है। अनेक शताब्दियों तक शक्तिशाली देश दुर्बल देशों को गुलाम बनाकर उनका सभी प्रकार से शोषण करते आये हैं। वास्तव में साम्राज्यवाद अपने में घृणास्पद है। एक देश की जनता दूसरे देशों की जनता का रक्त चूस लेती है। साम्राज्यवाद का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन-काल में रोमन साम्राज्य और आधुनिककाल में ब्रिटिश साम्राज्य साम्राज्यवाद के इतिहास में प्रमुख स्थान प्राप्त करते हैं। अपने-अपने समयों में इटली तथा ब्रिटेन ने अपनी सामरिक शक्ति को बढ़ाकर अन्य देशों को गुलाम बना लिया है। परन्तु साम्राज्यवाद की नींव अन्याय पर खड़ी हुई है। इसी कारण वह

अधिक दिनों तक चल नहीं सकता। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि कुछ वर्षों के पश्चात् इन दोनों साम्राज्यों का विघटन हो गया है और ये दोनों देश अपनी शक्ति खोकर सामान्य देशों के धरातल पर लौट गये हैं। इन साम्राज्यों के विघटन का मुख्य कारण यह है कि उनमें शासित देशों की जनता में राजनीतिक चेतना राष्ट्रीय जागरण के रूप में प्रकट हुई। परतन्त्र देशों की जनता में देशभक्ति की लहरें दौड़ने लगी। तभी तो ये साम्राज्यवादी वहाँ तनिक भी ठहर न सके और उनको अपना देश हारकर लौटना पड़ा।

दिनकर के कवि-जीवन का आरम्भ तब हुआ जब कि भारत परतन्त्र था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल में भारत फँसा हुआ था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत की जनता में राष्ट्रीय भावना पूर्ण रूप से जागृत हुई। ऐसी राष्ट्रीय चेतना के वातावरण में क्रान्तिकारी कवि दिनकर जनता को साम्राज्यवाद के विरोध में खड़े होने के लिए उद्‌बोधन देते हैं। कवि साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्ति करने के लिए स्वयं क्रान्ति का आवाहन करते हैं। कवि का कथन है कि भारतवासी अनेक युगों से परतन्त्र हैं और युगों से उनके रक्त का शोषण चल रहा है। भारतवासी अन्याय एवं अपमान को ढोते हुए चल रहे हैं। उन्हें साम्राज्यवादियों के विरुद्ध क्रान्ति करके प्रतिशोध लेने के लिए कवि जनता का यों आह्वान करते हैं—

> "युगों से हम अनय का भार ढोते आ रहे हैं
> न बोली तू मगर, हम रोज-मिटते जा रहे हैं
> पिलाने को कहाँ से रक्त लायें दानवों को?

साम्राज्यवादी अधिक दिनों तक अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सकते। कवि का कथन है कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध विश्व की सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य-प्रेमी जनता खड़ी हो गयी और परतंत्र देशों की जनता ने अपनी विराट शक्ति को पहचान लिया है। सभी परतंत्र देशों में गुलामी की जंजीरें टूट रही हैं। अतः कवि भारतीय जनता को अपनी शक्ति पहचान कर विद्रोह करने की प्रेरणा देते हैं। कवि साम्राज्यवादियों को सचेत करते हैं कि उन्हें परतंत्र देशों को स्वतन्त्रता देकर भाग जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ की जनता में प्रतिशोध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी है। अब सम्पूर्ण जनता साम्राज्यवादियों के विरोध में खड़ी होकर क्रान्ति करेगी तो साम्राज्यवाद का सर्वनाश हो जायेगा। कवि ब्रिटिश-साम्राज्यवादियों को जनता की शक्ति का परिचय देते हुए कुछ ऐतिहासिक क्रान्तियों का स्मरण यों दिलाते हैं—

"मत खेलो यों बेखबरी मे
जन-समुद्र यह नहीं, सिन्धु है, यह अमोघ ज्वाला का
जिसमे पड़कर बड़े-बड़े कगूरे पिघल चुके हैं,
लील चुका है यह समुद्र जाने कितने देशों मे
राजाओं के मुकुट और सपने नेताओं के भी।"

—नीम के पत्ते, पृ० ५, 'दिनकर'

कवि को जनता की शक्ति पर अटूट विश्वास है। वे कहते हैं कि कोई भी शासक जनता का अप्रिय होकर सत्तारूढ़ नहीं रह सकता। वह जनता के क्रोध का शिकार बन जाता है—

"है कौन जगत् मे, जो स्वतन्त्र जनसत्ता का अवरोध करे?
रह सकता सत्तारूढ़ कौन, जनता जब उस पर क्रोध करे?"

—नीम के पत्ते, पृ० ५, 'दिनकर'

अपने इस कथन के द्वारा क्रान्तिकारी कवि हमारी दृष्टि को अनायास ही अमेरिकी क्रान्ति, फ्रांसीसी क्रान्ति एवं रूसी क्रान्ति की ओर आकृष्ट करते हैं।

कवि अपने 'इतिहास के आँसू' में एक पात्र के द्वारा यह व्यक्त करते है कि हम भारतवासी किसी अन्य देश को अपना गुलाम बनाना नहीं चाहते। परन्तु स्वदेश के एक व्यक्ति को भी हम अन्य देशों के दास बनने नहीं देंगे।

यदि कोई देश हमसे प्रेम करता है तो हम भी प्रेम का व्यवहार करेंगे। यदि कोई खड्ग के द्वारा हमें जीतना चाहेगा तो उसके प्रत्युत्तर के रूप में हम अपने शक्तिशाली खड्ग का प्रयोग करेंगे।[1] इस प्रकार कविवर दिनकर अपनी कविता के द्वारा भारत की परतंत्र जनता को साम्राज्यवाद के विरोध में क्रान्ति करने को उद्‌बोधित करते हैं।

२. क्रूर शासकों के विरोध में क्रान्ति :—अनेक शताब्दियों से संसार में राजतंत्र की प्रथा चलती आ रही है। मानव-समाज के इतिहास में यह राजतंत्र बहुत वर्षों के पश्चात् ही आया था। इस राजतंत्र के उदय होने के पूर्व मानव-समाज के सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की समानता की भावना विद्यमान थी। कार्ल मार्क्स के अनुसार मानव-सभ्यता की उस अवस्था का नाम आरंभिक साम्यवादी समाज (प्रिमिटिव कम्यूनिष्टिक सोसाइटी) था। उस समय न कोई राजा था, न कोई प्रजा और न कोई शासक था और न कोई शासित। सभी मनुष्यों का प्रकृति के उपकरणों के उपभोग में समान भाग रहता था। ऊँच-नीच की कोई भावना विद्यमान नहीं थी। सभी समान थे। परन्तु समय के बढ़ने के साथ मनुष्य वैयक्तिक स्वार्थ प्रविष्ट हो गया। व्यक्ति समष्टि के प्रति अपने उत्तरदायित्व को छोड़ने लगा। वह आत्म-केन्द्रित होकर सुख-समृद्धि के साधनों को अन्यों की आँख बचाकर जुटाने लगा। एक मनुष्य के उदाहरण को देखकर सभी मनुष्य अन्यों से छिपकर सुख-साधनों को जुटाने लगे। उसमें बलशाली धनवान् बने और निर्बल निर्धन ही रह गये। तभी से मानव समाज में विषमता व्याप्त हो गयी। सबसे शक्तिशाली व्यक्ति राजा बना और देश की सम्पूर्ण धरा पर उसी का एकाधिकार हो गया। वह अन्य मानवों को (प्रजा को) भूमि देकर उनसे कर वसूल करने लगा। कविवर दिनकर मानव-समाज की इस लम्बी राजनीतिक प्रक्रिया को अपनी कविता को समझाते हैं। कवि साम्यवाद के समर्थक हैं। मानव-मानव के बीच की असमानता कवि को अखरती है। 'कुरुक्षेत्र' में कवि भीष्म पितामह के द्वारा अपनी विचारधारा को व्यक्त करते हैं। भीष्म धर्मराज से कहते हैं कि यह भूमि किसी एक मनुष्य की क्रीत दासी नहीं है। इसके सभी निवासियों को इसके ऊपर समान अधिकार है। प्राकृतिक सम्पत्ति पर मनुष्य मात्र का स्वत्व है और उसके प्रत्येक अणु

१. देखिए—इतिहास के आँसू : दिनकर, पृ० १८।

पर सभी जनो का अधिकार है।[1] जिस प्रकार आज जल और वायु सुलभ हैं, उसी प्रकार एक समय में भूमि भी सर्वसुलभ थी। सभी मनुष्य एक-दूसरे के साथ समष्टि सूत्र में बँधे हुए थे। न कोई राजा था और न कोई प्रजा ही। सभी जनता के मन पर धर्म-नीति का अनुशासन था।[2] कुछ वर्षों के पश्चात् मनुष्य स्वार्थी बनकर अन्यो से आँख बचाकर धन अपने लिये जुटाने लगा—

"उर के निभृत कोने से लोभ मनुष्य का बोला
लगा जोडने अपना धन औरों की आँख बचाकर"
—कुरुक्षेत्र, पृ० ७१, 'दिनकर'

अब व्यक्तियों के स्वार्थ टकराने लगे और शक्तिशाली मनुष्य अन्यों से सुख-समृद्धि के साधन छीनने लगे। मानव-समाज में युद्ध का प्रादुर्भाव हो गया। कवि भीष्म के द्वारा कहलाते है कि इसी क्रम ने मनुष्य के वैयक्तिक स्वार्थ ने राजा-प्रजा के भेदभाव को उत्पन्न किया। नहीं तो यहाँ कौन किसका राजा है और कौन किसकी प्रजा है? वास्तव में स्वय ही भ्रमित होकर स्वार्थी मनुष्यो ने राजा-प्रजा की व्यवस्था की सृष्टि की है।[3] सबसे शक्तिशाली मनुष्य राजा बना तथा अन्य मनुष्य अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए उसका समर्थन करने लगे। उस समय निर्बल तथा असहायो के ऊपर राजा खड्ग-बल से शासन करने

१. "धर्मराज! यह भूमि किसी की नहीं क्रीत है दासी
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी
... ...
जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, वह मनुज मात्र का धन है
धर्मराज! उसके कण-कण का अधिकारी जन-जन है"
—कुरुक्षेत्र, पृ० ११, 'दिनकर'

२ "बिना विघ्न जल, अनिल सुलभ है आज सभी को जैसे
सब थे बद्ध समष्टि सूत्र में, कोई छिन्न नहीं था,
राजा-प्रजा नहीं था कोई और नहीं शासन था
धर्म-नीति का जन-जन के मन-मन पर अनुशासन था"
—वही, पृ० ११

३ "कौन यहाँ राजा किसका है? किसकी कौन प्रजा है?
नर ने होकर भ्रमित स्वयं ही यह बन्धन सिरजा है।"—कुरुक्षेत्र, पृ० ११

लगा। उसमें नृशंसता बढ़ गयी। वह दण्डनीति नाम से दुर्बलों को सताने लगा।[१] इस प्रकार अपने को सुखी बनाने के लिए व्यष्टि समष्टि को छोड़कर चली और स्वयं अनजान में ही दासता के गर्त में गिर गयी है।[२] कवि कहते हैं कि वास्तव में मनुष्य के सामने सहज एवं सरल मार्ग खुला हुआ था जिस पर चल कर वह अपने सुख के साथ सभी को सुख प्रदान कर सकता था। मनुष्य का कर्तव्य यह नहीं है कि वह छिपकर चोर की तरह अन्यों की सुख-सम्पत्ति लूटे। आरंभिक समाज में मनुष्य जब एक-दूसरे को शंका एवं भय की दृष्टि से देखने लगे तो वे अपने ही भोग-संचय में लग गये। मानव-समाज में भोगवाद की होड़ चलने लगी। मार्क्स की भाँति कवि की भी यही धारणा है कि यह वैयक्तिक भोगवाद ही, जो स्वयं स्वार्थ का निष्कर्ष है, सभी विषमताओं के मूल में है और उसी से विष की धारा सामाजिक धरातल पर अब तक बह रही है।[३]

कवि का कथन है कि जब तक सभी मनुष्यों को न्यायोचित सुख सुलभ नहीं होता तब तक इस संसार में कोई शान्ति नहीं रहेगी।[४] राजतंत्र मनुष्य को उसके न्यायोचित सुखों से वंचित कर देता है। अतः राजतंत्र कुछ स्वार्थी मनुष्यों की हीन एवं मलिन प्रवृत्ति का द्योतक है। वह मानवता की ग्लानि तथा संस्कृति का दुखद कलंक है।[५] कवि राजतंत्र के प्रति घृणा प्रकट करते

---

१. और खड्गधर पुरुष-विक्रमी शासक बना मनुज का
दण्डनीति-धारी शासक नर-तन में छिपे दनुज का।"—वही, पृ० १४१

२. "तज समष्टि को व्यष्टि चली थी निज को सुखी बनाने
गिरी गहन दासत्व-गर्त के बीच स्वयं अनजाने।"—वही, पृ० १४१

३. "था पथ सहज अतीव सम्मिलित हो समग्र सुख पाना
केवल अपने लिए नहीं कोई सुख-भोग चुराना
उसे भूल, पर, फँसा परस्पर की शंका में, भय में
निरत हुआ, केवल अपने ही हेतु भोग-संचय में
इस वैयक्तिक भोगवाद से फूटी विष की धारा"
तड़प रहा जिसमें पड़कर मानव-समाज यह सारा"—कुरुक्षेत्र, पृ० १४१

४. "न्यायोचित सुख सुलभ नहीं जब तक मानव-मानव को
चैन कहाँ धरती पर, तब तक शान्ति कहाँ इस भव को"
—कुरुक्षेत्र, पृ० १४१

५. "राजतन्त्र द्योतक है नर की मलिन, निरीह प्रकृति का
मानवता की ग्लानि और कुत्सित कलंक संस्कृति का"—वही, पृ० १४४

है। कारण यह है कि ये राजा धनाकांक्षी कठोर जीव है, धन-लोलुप चोर है उनकी धन-लोलुपता की कोई सीमा नहीं है। अधिक सम्पत्ति के होते हुए भी वे खड्ग के आधार से असहाय एवं निरीह जनता के धन को छीनकर उन्हें प्राकृतिक अधिकारों से वंचित करते है।[1] ये क्रूर शासक अपने को अन्यो से अधिक और एव शक्तिशाली सिद्ध करने के लिए युद्ध के प्रलय को जन-पारावार पर लादते रहते है।[2] राजाओ की युद्ध-नीति के सम्बन्ध में कवि की यह धारणा है कि अपनी सत्ता को बढ़ाने के लिए और सभी को अपने अनुशासन में रखने के लिए राजा या शासक युद्ध की रचना करते हैं। ज्यो-ज्यो उनको विजय मिलती जाती है त्यो-त्यो नरपतियो का अहं बढ़ता जाता है और वे समाज के सिर पर धाक जमाकर बैठ जाते है।[3] प्रत्येक विजय पर वे आनन्द मनाते हैं और अधिक सुख का अनुभव करते है। वे रण के द्वारा अपने कल्पित अभाव से मुक्त होना चाहते हैं और राज्य की सीमाओ को बढ़ाकर अधिक जनता को लूटना चाहते है।[4] ऐसे नृशंस राजाओं

---

१. "हाय रे! धनलुब्ध जीव-कठोर!
हाय रे! दारुण मुकुट धर भूप लोलुप चोर
साजकर इतना बड़ा सामान
स्वत्व निज सर्वत्र अपना मान
खड्ग-बल का ले मृषा-आधार
छीनता-फिरता मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार"—सामधेनी, पृ० ४४ व ४५

२. "मौं उठा पाये न तेरे सामने बलहीन
इसलिए ही तो प्रलय यह हाय! रे हिय-हीन"—सामधेनी, पृ० ४५

३. "रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले
भूपो के विपरीत न कोई कहीं कभी कुछ भी बोले
ज्यो-त्यो मिलती विजय, अहं नरपति का बढ़ता जाता है
और जोर से वह समाज के सिर पर चढ़ता जाता है।"
—रश्मिरथी, पृ० १२

४. "रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हो, मानी हो
और प्रजायें मिले उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हो
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें
बढ़े राज्य की सीमा जिससे अधिक जनो को लूट सकें।"
—रश्मिरथी, पृ० १२

के अधीन यह पृथ्वी जब तक रहती है, तब तक उसके दुखों का कोई अंत नहीं है। ये राजा समझाने पर नहीं समझेंगे। वे खड्ग की (क्रान्ति की) भाषा को छोड़कर और कुछ नहीं समझते।[१] अत: कवि ऐसे मदांध राजाओं को मिटाने के लिए खड्ग धारण करने के लिए कहते हैं। कवि के अनुसार रक्त-क्रान्ति ही ऐसे राजाओं के लिए उचित समाधान है। परन्तु राजा भी क्रान्तियों को तथा जन-जागरण को निर्मम होकर कुचलने की चेष्टा करते है। वे जनता के प्रति दमन एवं शोषण की नीति अपनाते हैं। तभी तो क्रान्ति के बीज जनता में और भी वेग से पनपने लगते है। क्रान्ति स्वयं अपने जन्म के सम्बन्ध में दिनकर की वाणी में यों कहती है—

' रस्सों से कसे अनाथ पाप-प्रतिकार न जब कर पाते हैं
बहनों की लुटती लाज देखकर काँप-काँप रह जाते हैं
शस्त्रों के भय से जब निरस्त्र आँसू भी नहीं बहाते हैं
पी अपमानों के गरल घूँट शासित जब होंठ चबाते हैं
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म-लगन"[२]

इस प्रकार शोषण एवं दमन में ही क्रान्ति के बीज उत्पन्न होते हैं। कवि कहते हैं कि जहाँ सत्ताधारी अनीति-पद्धति को अपनाते हों, जहाँ अन्यायी तथा अविचारी समाज के सूत्रधार बनते हो, जहाँ खण्ड-बल ही शासन का एक मात्र आधार हो जाता हो, जहाँ क्रोध से जनता का हृदय भभक उठता हो, जहाँ अत्याचारों को सह-सहकर मनुष्य का मन रहा हो, जहाँ मनुष्य स्वयं अपनी कायरता को धिक्कार रहा हो और जहाँ अहंकार एवं घृणा का द्वन्द्व वर्तमान हो, वहाँ ऊपर शान्ति के दिखायी देने पर भी हमें यह समझना चाहिए कि उसके तलातल में

१. "तब तक पड़ी आग में धरती, इसी तरह अकुलायेगी
चाहे जो भी करें, दु:खों से छूट नहीं वह पायेगी।
थकी जीभ समझाकर, गहरी लगी ठेस अभिलाषा को
भूप समझता नहीं और कुछ छोड़ खड्ग की भाषा को"

—वही, पृ० १३

२. हुंकार (विपथगा) : पृ० ७३।

क्रान्ति की अग्नि सुलग रही है।[1] यह सुलगनेवाली अग्नि किसी दिन क्रान्ति
रूप में फूट पड़ेगी जबकि अन्यायी शासक पर काल की भाँति मानव संयम
छोड़कर टूट पड़ेगा।[2] कवि पूछते हैं कि इस युद्ध का उत्तरदायित्व किस पर
होगा ? स्पष्ट है कि वह उत्तरदायित्व शासक के ऊपर ही है।[3] जब जनता
क्रान्ति करने लगती है तो शासकों को महलों की नींव उखड़ जाती है। जनता
की क्रान्ति को अन्यायी शासक रोक नहीं सकता। कवि राजतन्त्र की अपेक्षा
प्रजातन्त्र को उत्कृष्ट मानते हैं, क्योंकि प्रजातन्त्र में प्रजा ही शासक है।[4]
परन्तु प्रजातन्त्र वहाँ श्रेष्ठ प्रमाणित नहीं होता जहाँ की जनता में अविचारी
और अत्याचारी अधिक रहते हैं। वे प्रजातन्त्र का दुरुपयोग करेंगे। वे एक-
दूसरे को लूटते तथा एक दूसरे से झगड़ते रहते हैं। यह एक प्रकार से अराजकता
की स्थिति है। ऐसे विकृत मनुष्यों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए एक खड्गधर
शासक की परमावश्यकता है। खड्ग के सहारे वह परस्पर लड़नेवालों को
नियन्त्रण में रख सकता है। खड्ग की आवश्यकता और भी इसलिए कि मनुष्य
स्वयं न्याय से नहीं डरता। अत. ऐसे स्वार्थी, अन्यायी प्रजा का उद्धार करने
के लिए धर्मध्वज-धारी राजा या शासक की आवश्यकता है। कवि का कथन

---

१. "जहाँ पालते हों अनीति-पद्धति को सत्ताधारी
जहाँ सूत्रधर हों समाज के अन्यायी अविचारी,
जहाँ खड्ग-बल एक मात्र आधार बने शासन का
दबे क्रोध से भभक रहा हो हृदय जहाँ जन-जन का
सहते-सहते अनय जहाँ मर रहा मनुज का मन हो
समझ कापुरुष अपने को धिक्कार रहा जन-जन हो
अहंकार के साथ घृणा का जहाँ द्वन्द्व हो जारी
ऊपर शान्ति तलातल में हो छिटक रही चिनगारी।"—कुरुक्षेत्र, पृ० २१

२. "दबे हुए आवेग वहाँ यदि उबल किसी दिन फूटें
संयम छोड़ काल बन मानव अन्यायी पर टूटें"—वही, पृ० ११

३. "कहो कौन दायी होगा उस दारुण जगद्दहन का ?
अहंकार या घृणा ? कौन दोषी होगा उस रण का ?"—वही, पृ० ११

४. "सब से विराट जन-तन्त्र जगत का आ पहुँचा
... ...
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है"—धूप और धुआँ, पृ० ७०

है कि राजतन्त्र कुत्सित होने के कारण राज-धर्म असि-धारा-व्रत के समान है।[१] कवि का अभिप्राय यह है कि प्रजातन्त्र वहीं पर सार्थक होगा जहाँ प्रजा धर्म-भीरु और निःस्वार्थी हो। अन्यथा वहाँ भी लूट-मार की संभावना है।

निष्कर्ष यह है कि कविवर दिनकर ने अन्यायी शासकों के विरोध में जनता का पक्ष ले लिया है। कवि ने अपनी क्रान्तिकारी विचारधारा के द्वारा विदेशी शासन से पीड़ित मृत प्राय जनता के प्राणों में क्रान्ति का स्वर फूँक दिया है। कवि को इस कार्य में अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है।

---

१. "नर है विकृत अतः नरपति चाहिए धर्म-ध्वज-धारी
राजतंत्र है हेय, इसी से राजधर्म है भारी
... ...
नर-समाज को एक खड्गधर नृपति चाहिए भारी
डरा करें जिससे मनुष्य अत्याचारी, अविचारी
नृपति चाहिए क्योंकि परस्पर मनुज लड़ा करते हैं
खड्ग चाहिए क्योंकि न्याय से वे न स्वयं डरते हैं।"—कुरुक्षेत्र, पृ० ४८

श्रीशंकर मुद्रणालय, हाथीगली, वाराणसी।